ऐतिहासिक शोध संग्रह

लेखक

श्री रामवल्लभ सोमानी

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर

प्रकाशक
श्री देवेन्द्र सिंह गेहलोत
हिन्द साहित्य मंदिर,
जोधपुर

जनवरी, १९७०

मूल्य १०) दस रुपया

डा० गोपीनाथ जी शर्मा एम ए डी लिट

को

सादर समर्पित

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रंथ में समय समय पर प्रकाशित लेखों का संग्रह है। अधिकांश लेख पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित हैं और प्रामाणिक साधन सामग्री के आधार से लिखे गये हैं अतएव ये राजस्थान के इतिहास के अध्ययन के लिये ये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे, ऐसी आशा करता हूं।

रामवल्लभ सोमानी

गंगापुर (भीलवाड़ा)

दिनांक ४-१२-६९

विषय सूची

महाराणा हमीर की चित्तौड़ विजय की तिथि | १

महाराणा हमीर की चित्तौड़ विजय की तिथि निश्चित नहीं है। मेवाड़ की ख्यातों में यह[1] तिथि वि० सं० १३५७ (१३०० ई०) दी है। यह तिथि निश्चित रूप से गलत है। उस समय मेवाड़ में महारावल समरसिंह शासक था। इसके बाद महारावल रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। इसके समय वि० सं० १३६० (१३०३ ई०) में सुल्तान अलाउद्दीन ने चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया और रत्नसिंह को बन्दी बना[2] गाव २ घुमाया जिसे गोरा बादल की सहायता से वापस छुड़ा लाया गया। रत्नसिंह की अनुपस्थिति में दुर्ग का रक्षा-भार हमीर के पितामह लक्ष्मणसिंह पर डाला गया। सीसोदा वाले समरसिंह के समय[3] से

---

1 ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० २३२ ३४ का फुटनोट।

2 अमीर खुसरो—खजाइन उल फतुह का अनुवाद पृ० ४७ ४८। इसी प्रकार का वर्णन कक्क सूरि द्वारा विरचित नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध में मिलता है— चित्रकूट दुर्गेशं बध्वा स्वात्मा च तद्धनम्। कंठबद्ध कपिमिवा भ्रामयत्त पुरे पुरे ॥ ११४ ॥

3 युग प्रधान गुर्वावली का यह वर्णन विचारणीय है—
(१३५४ वि०) फाल्गुन सुदि ५ चतुरसीतौ श्रीयमाविवेन श्री नेमिनाथ श्रीपार्श्वनाथयोः शान्ति प्रद्युम्नमुनेरम्बिकायाश्च प्रासादेषु ध्वज (रत्न ?) रत्नद्वी अम्बिकायाश्च ध्वजारोपमहोत्सवः सकल-राजपुत्रयोरयराजपुत्रश्रीअरिसिंह सानिध्याम् ...... (पृ० ५६)
कुम्भा के समय में लिखी गई आवश्यक बृहद्वृत्ति के दूसरे अध्याय की वृत्ति में सहणपाल के लिए राजमंत्रीकुरापोरय साधु-सहण

कई प्रभावशाली पदों पर नियुक्त थे। अमर काव्य वंशावली के अनुसार रत्नसिंह समरसिंह का वास्तविक पुत्र न होकर गोद का लिया हुआ था जो सीसोदा शाखा का था। लक्ष्मणसिंह अपने ७ पुत्रों सहित दुर्ग की रक्षा[4] करते हुए देवलोक को गया था। अतएव वि० सं० १३५७(१३०) में न तो हमीर चित्तौड़ का और न सीसोदा का ही स्वामी हो सकता था। ख्यातों में इस तिथि की मान्यता का आधार यह है कि भाटों को वि० सं १४२१ (१३६४ ई०) हमीर की निधन तिथि संभवतः ज्ञात थी और उसके ६४ वर्ष तक राज्य करने की धारणा भी प्रचलित थी। इस लिए १४२१ वि० से ६४ वर्ष कम करके १३५७ हमीर के राज्यारोहण की तिथि मानली है, जो गलत है।

श्री एस० दत्त ने हमीर की चित्तौड़ विजय[5] की तिथि वि० सं १३७१ (१३१४ ई०) मानी है जो भी गलत है। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ दुर्ग को विजय कर अपने पुत्र खिज्रखां को दिया था जिससे वि० सं० १३६८ में लेकर इसे मालदेव सोनगरा को दे दिया। मालदेव ने संभवतः ७ वर्ष तक राज्य किया था। इसके पश्चात उसकी मृत्यु हो गई। फरिश्ता के अनुसार इसने आक्रमण के पूर्व की सी स्थिति का दी थी। वह प्रति वर्ष कुछ निश्चित राशि ५ ०० घुड़सवार और १०,००० पैदल सैनिक सुल्तान की सेवा में भेजता[6] था। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् ५ वर्षों तक कई शासक हुये और वि सं० १३७८ (१३२१ ई०) में सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली का बादशाह हुआ। इसके समय का एक शिलालेख मलिक असदुद्दीन का चित्तौड़[7] दुर्ग से मिला है। यह

पाषाणलेख वर्णित है। इससे प्रतीत होता है कि अरि सिंह भी संभवतः मुख्य मंत्री था।

4 पुमाण् वंश (रुप) बस्तु लक्ष्मसिंहस्तस्मिन्गते दुर्गवरं ररक्ष।
कुलस्थिति कापुरुषैर्विमुच्यं न जातु धीराः पुरुषास्त्यजंति ॥१७७॥
(कुंभलगढ़ प्रशस्ति)

5 भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित देहली सुल्तानेत पृ० ३९६

6 तारीख–ए–फरिश्ता (ब्रिग्ज का अनुवाद) भाग १ पृ० ३६१

7 उदयपुर राज्य के इतिहास पृ १९७ पर दिया गया इसका

उक्त बादशाह का नायब बारबक था। गयासुद्दीन के कई सिक्के मेवाड़ से मिले हैं। एक चौकोर चांदी का सिक्का जिसके पीछे कुरान की आयतें और दूसरी तरफ गयासुद्दीन गाजी का नाम अंकित है हमारे परिवार में पीढ़ियों से सुरक्षित है। फरिश्ता के वर्णन के अनुसार सुल्तान अला उद्दीन के अन्तिम दिनों में राजपूतों ने दुर्ग पर आक्रमण किया था[8] और मुसलमान सैनिकों को काफी नुकसान पहुंचाया था किन्तु सुल्तान गयासुद्दीन और मोहम्मद के समय का शिलालेख मिल जाने से भी इस की धारणा गलत साबित हो जाती है।

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने[9] यह तिथि वि० सं० १३८१ मानी है। इनकी मान्यता का आधार यह अनुमान है कि मोहम्मद तुगलक के समय हमीर ने चित्तौड़ विजय की थी और कोई प्रामाणिक साधन सम्भवतः उनको भी मिल नहीं सका था। करेड़ा के जैन मंदिर में जो मेवाड़ के प्राचीनतम जैन देवालयों[10] में से है वि० सं० १३९२ का लघु[11] लेख लग रहा है। यह लेख इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है।

उदाहरण इस प्रकार है — ………सुलतानशाह बादशाह सूर्य मान के समान मुल्क का स्वामी ताज और तख्त का मालिक दुनियां को प्रकाशित करने वाले सूर्य और ईश्वर की छाया के समान बादशाहों में सबसे बड़ा अपने वक्त का एक ही है……… बादशाह का फरमान उसकी राय से सुशोभित रहे। गयासुद्दीन अर्सलां बादशाहों का बादशाह दाताओं का दाता तथा देश की रक्षा करने वाला है। उससे न्याय और इन्साफ की नींव दृढ़ है … १ समाप्ति अब्बास।……

8 तारीख-ए-फरिश्ता (ब्रिग्ज का अनुवाद) भाग १ पृ० १८-८१

9 ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० २११ १४

10 करेड़ा के जैन मंदिर से प्राप्त अब तक के लेखों में वि० सं० १०३९ का है जिसमें संडेर गच्छीय आचार्य यशोभद्रसूरि संतान श्री श्यामाचार्य द्वारा पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है।

11 ………संवत् १३९२ पौष सुदि ७ रवौ श्री चित्रकूट स्वामी महाराज

इसमें चित्तौड़ के राजा पृथ्वीचंद्र मालदेव के पुत्र बणवीर सिलहदार मोहम्मद देव आदि का उल्लेख है और किसी की मृत्यु पर गोमट्ट बनाने का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक चित्तौड़ दुर्ग पर हमीर का अधिकार नहीं हो सका था और यहां मालदेव के परिवार के किसी पृथ्वीचंद्र राजा का उल्लेख है अथवा इसे मालदेव के पुत्र बणवीर का विशेषण भी कह सकते हैं। हमीर का उसके साथ संघर्ष सम्भावित है। वि० सं० १४६५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में भी इस संघर्ष का[12] उल्लेख है। मोड़वाड़ में बणवीर के समय का शिलालेख वि० सं० ११६४ का मिला[13] है, अतएव यह कहा जा सकता है कि हमीर की चित्तौड़ विजय वि० सं० १३६२-६४ के मध्य सम्पन्न हुई थी। ख्यातों में बणवीर की सहायता से उसका चित्तौड़ लेना लिखा मिलता है, किन्तु उसके वि० सं० १३६४ के लेख में उसका उल्लेख एक स्वतंत्र शासक के रूप में हो रहा है। अतएव यह ख्यातों का वर्णन कहां तक सही है, कहा नहीं जा सकता है। इसी प्रकार हमीर के ६४ वर्ष तक राज्य करने की धारणा भी गलत है क्योंकि

राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र .... श्रीमालदेवपुत्र बणवीर सत्कं सिलहदार महम्मददेव सुहडाविह बउडरा सत्कं......पुत्र विर्मल तस्य सत्क गोमट्ट करापित .... (नाहर जैन लेख संग्रह भाग १ पृ २४२)

12 यद्वे तत्र पवित्रचित्रचरितस्तेजस्विनामग्रणी श्रीहमीरमहीपतिस्म तपति क्ष्मापालभालोपरि । तीक्ष्णासिमुखमण्डलमिष संघट्टघाताहता यस्याद्यापि वदन्ति कीर्तिममितं संग्रामसीमाभुव ॥१॥

(चित्तौड़ की वि सं० १४६५ की महावीर प्रसाद की प्रशस्ति)

13 ॐ स्वस्ति श्री नृप विक्रमकालातीत संवत १ (१) ६४ वर्षे चैत्र सुदि ११ गुरु श्री मासकपुरे। महाराजाधिराज श्रीबणवीर देव राज्ये... ... (कोट सोलंकियों का लेख)

उसके उत्तराधिकारी महाराणा खेता के वि० सं० १४२१ का [14] लेख और १४११ का करेड़ा जैन मन्दिर का विज्ञप्ति लेख मिला [15] है जो अधिक विश्वसनीय है। अतएव हमीर का चित्तौड़ पर राज्य वि० सं० १३९२ ९४ से लेकर १४२१ वि० तक मानना चाहिये।

[राजस्थान भारतीय भाग १०
अङ्क २ पृ० २९ पर प्रकाशित]

—:§:—

14 ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० २५८ २५९
15 विज्ञप्ति महा लेख संग्रह पृ० ११–१४

वागड़ में गुहिल राज्य की स्थापना

२

मध्यकालीन शिलालेखों में वागड़ शब्द भूतपूर्व डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों के भू भाग के लिए प्रयुक्त[1] हुआ है। हाल ही में मिले शिलालेखों और ताम्रपत्रों से यह सिद्ध हो गया है कि इस क्षेत्र में गुहिल-वंशियों का राज्य दीर्घकाल से चला आ रहा था। इस क्षेत्र से ७वी शताब्दी से इनके बराबर शिलालेख भी मिलते आ रहे हैं। यहां गुहिल वंशियों की कई शाखाओं का राज्य रहा है, जिसका विवरण इस प्रकार है —

(१) कल्याणपुर के गुहिल वंशी शासक
(२) भर्तृपट्टवंशी गुहिल
(३) सामन्तसिंह या मेवाड़ के गुहिल
(४) सीहड़ के वंशज

इन शाखाओं का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है —

गुहिल या गुहदत्त की तिथि —

गुहिल वंश की संस्थापना गुहिल से की थी जिसे गुहदत्त भी कहते हैं। ओझाजी के अनुसार[3] इसकी तिथि ५६६ ई० है। इसकी मान्यता का मुख्य आधार सामोली का शिलालेख है, जिसकी तिथि ७०३ वि० (६४६ ई०) है। वे लिखते हैं कि सामोली का उक्त

---

(1) ओझा-डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ० १-२
(3) उदयपुर ,, पृ ६६

शिलालेख गुहिल के ५वें वंशधर शीलादित्य का है । औसतन प्रत्येक राजा का शासनकाल २० वर्ष मानते हैं । इस हिसाब से गुहिल का काल वि० सं० ६२१ (५६६ ई०) आना चाहिये । लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह तिथि गलत है । हाल ही में नगर गांव से वि० सं० ७४१ का एक शिलालेख भर्तृपट्टवंशी गुहिलों का मिला[3] है । इस शिलालेख में ईशानभट्ट उपेन्द्रभट्ट गुहिल और धनिक नामक राजाओं का उल्लेख है । चाटसू के बालादित्य के शिलालेख में भी इन राजाओं[4] का उल्लेख है और इन्हें स्पष्टतः भर्तृपट्टवंशी माना है, जो गुहिल वंशियों की एक शाखा है । इस प्रकार से भर्तृपट्ट ईशान भट्ट का पूर्वज अवश्य रहा होगा । इसके बहुत समय पूर्व गुहिल का समय होना चाहिए जिसमें कि यह वंश चला है । अतएव ओझाजी द्वारा मानी गई उसकी तिथि वि० सं० ६२१ (५६६ ई०) अवश्यमेव गलत है क्योंकि उसके वंशज भर्तृपट्ट की तिथि ही उनकी मान्यता के अनुसार ६२१ वि० (५६४ ई०) मानी है । अतएव इस तिथि पर पुनः विचार करना आवश्यक है ।

कल्याणपुर के गुहिल

कल्याणपुर, जिसे शिलालेखों में किष्किन्धापुरी कहा गया है उदयपुर से ४५ मील के लगभग दक्षिण में स्थित है । यहां से प्राप्त मूर्तियों के विवरण एवं कई लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं । यहां गुहिल वंशियों का अधिकार कब हुआ था यह बतलाना कठिन अवश्य है किन्तु यह सत्य है कि ७वीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही यहां इनका राज्य अवश्य हो चुका था । पुरातत्ववेत्ता डा० डी० सी० सरकार[5] राजा पद्म को भी गुहिल वंशी मानते हैं जिसका एक अभिलेख ७वीं शताब्दी के प्रारम्भ का है जो हाल ही में प्रकाशित हुआ है । इस लेख

(3) क्लासिकल एज (भारतीय विद्या भवन बम्बई द्वारा प्रकाशित) पृ० १६० । भारत कौमुदी पृ० २७४–७६

(4) एपिग्राफिआ इण्डिका भाग १२ पृ० ११ से १७

(5) „ „ भाग ३५ पृ० ५५ से ५७

मे इसका वंश आदि का उल्लेख नही है। इसमें शिव मन्दिर बनाने का उल्लेख[6] है। इसका विरुद महाराजा ही होने से अनुमान किया जाता है कि यह स्थानीय राजा मात्र था। इसके पश्चात् राजा देवगण शासक हुआ था। इसका उल्लेख यहाँ से प्राप्त सं० ४८ और ८१ के ताम्रपत्रों[7] में किया गया है। डी० सी० सरकार इसे पद के पश्चात् हुआ मानते हैं और अन्यत्र[8] इसे ६४० ई० में हुआ मानते हैं। इसके पश्चात् राजा माधिहित शासक हुआ था। इसका ताम्रपत्र सं० ४८ का मिला है। यह उसके पितृव्य देवगण की स्मृति में ब्राह्मण अग्रहारम[9] को जारी किया गया था। स्मरण रहे कि लेख में स्पष्ट ल- गुहिलपुत्रान्वये सकलजनमनोहर' .... आदि विशेषण लगाकर राजा का उल्लेख किया है अतएव इसके गुहिलवंशी होने में संदेह ही नही किया जा सकता।

इसके पश्चात् राजा भेति शासक हुआ था। इसके समय का एक अप्रकाशित ताम्रपत्र मिला है जो धुलेव के निवासी श्री कामुलाल के पास है। इस ताम्रपत्र मे सं० ७१ दिया है और राजा के वंश और पूर्वजों का उल्लेख इसमें नही है। इस ताम्रपत्र की ७वीं पंक्ति में 'दूतकोत्र सामन्त अभिहृति" शब्द से कुछ विद्वान् ऐसा भी अनुमान करते हैं कि सामन्त अभिहृति निश्चित रूप से सं० ४८ के ताम्रपत्र वाला माधिहित है और इसका सम्बन्ध भेति से इतना ही है कि यह उसका सामन्त मात्र है। दोनों अलग अलग राजा हैं। किन्तु यह एक मात्र अनुमान ही है। इसका मुख्य आधार यह है कि दोनों के लिपियों में स्पष्ट अन्तर है। अतएव नाम की समानता से एक ही शासक नही

(6) कारितं धूर्जिटिदेवकुल शिवतामो (मु) त्पसित्रये श्रीमहाराज पद्द (व) राज्ये (उपयु क्त)
(7) उपयु क्त भाग १४ पृ० १६७
(8) दी जोरिसा हिस्टोरिकल रिसर्च जरनल Vol VIII जुलाई १९५९ में डी सी सरकार का लेख।
(9) एपिग्राफिया इंडिका Vol ३० पृ १

माना जा सकता[10]। इस दानपत्र की दूसरी पंक्ति में "विदित यथा मया महाराज बप्पिदत्ति तस्यैव पुण्याप्यायननिमित्तर्थं आदि उल्लेखित है और उपरक्त गांव दान देने का उल्लेख है। यहां बप्पिदत्ति से कुछ विद्वान् बाप्पारावलका अर्थ लेते हैं एवं कुछ इसका अर्थ पिता से लेते हैं। बाप्पारावल सम्बन्धी विस्तृत दृष्टिकोण श्री रोशनलाल सामर ने अपने लेख 'न्यू एसपेक्ट ऑफ धुलेव प्लेट ऑफ[11] महाराज भेत्ति' में किया है। इस सिद्धान्त में कई भूलें हैं। सबसे पहली मूलभूत बात बाप्पारावल की तिथि वि॰ सं॰ ८१० मानी गई है जो राजा कुक्कटेश्वर के वि॰ सं॰ ८११ के लेख के मिल जाने से स्वतः गलत[12] साबित हो जाती है। इसके अतिरिक्त मेवाड़ के शिलालेखों में सर्वत्र बाप्पारावल को मुख्य दाता का ही वर्णित किया है। इसका कल्याणपुर से जाकर नागदा में अधिकार कर लेना कहीं भी वर्णित नहीं है। इसके विपरीत शिलालेखों में पिता के लिये 'बाप्पा या बप्प' शब्द भी प्रयोग[13] में लाया जाता है। अगर यहां बप्पिदत्ति को व्यक्तिवाचक मानें तो यह राजा निःसंदेह मेवाड़ के बाप्पारावल से भिन्न था और भाविहित के पश्चात् ही शासक हुआ प्रतीत होता है। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया जा सकता। श्री जोगेन्द्रप्रतापसिंह ने अपने लेख "बप्पदत्ति आफ धुलेव-प्लेट एण्ड गुहिल बाप्पा" में भी सामर के विचारों की आलोचना की है[14]।

---

(10) राजा देवगण भाविहित बामटट आदि के विरुद्ध अवाप्ता शेष महाशब्द समाधिगतपञ्चमहाशब्द समुपार्जित पञ्चमहाशब्द आदि अङ्कित हैं।

(11) जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री Vol XL भाग II अगस्त १९६२ सिरियल नं॰ ११९

(12) जनरल आफ राजस्थान हिस्टोरिकल इन्स्टिट्यूट Vol III No ४ पृ॰ ४२

(13) जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री Vol XL II पार्ट II अगस्त १९६४ पृ॰ ४१५ ४१९

(14) उपयुक्त

राजा मेति के पश्चात बामट्ट शासक हुआ था जो अपने आपको देवगण का वंशज बतलाता है। यह भी अपने दानपत्र में न तो माविहिल और न मेति का उल्लेख ही करता है। इसको भी दानपत्र में स्पष्ट मुहिल वंशी शासक माना है। दानपत्र के प्रारम्भ [15] में ही स्वस्ति किष्किन्धापुरात् गुहिलनराधिपवंश मुखमणिगणकिरणरञ्जत.......... आदि कहा है। इस वंश में 'भारट्ट स्वामी' नामक एक राजपुत्र का उल्लेख है जो इसका उत्तराधिकारी रहा होगा। इस क्षेत्र से राजा बैदचित्र का भी एक शिलालेख मिला है। इसे ८वीं शताब्दी का माना जाता है। इस लेख में बोम्गा नामक एक स्त्री द्वारा शिव मंदिर के लिये कुछ दान देने का उल्लेख है [16]।

इन लेखों में सबसे बड़ी कठिनाई इस बात की है कि इनमें प्रयुक्त तिथियां किस संवत् की हैं? कई विद्वानों ने अलग २ मत व्यक्त किये हैं। श्री ओझा और सरकार इसे हर्ष संवत् [17] की तिथियां मानते हैं। श्री मिराशी इसे भट्टिक संवत् की तिथि [18] मानते हैं। डा० दशरथ शर्मा ने अपने एक विस्तृत लेख में भट्टिक संवत् की कई तिथियां प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इस संवत् की तिथियां जसलमेर राज्य के भू-भाग के बाहर [19] नहीं मिली हैं। अतएव यह कहना असंगत है कि बागड़ के पहाड़ी भाग में कभी भाटियों का अधिकार हो गया हो। हर्ष संवत् के सम्बन्ध में श्री मिराशी यह स्पष्टीकरण देते

(15) एपिग्राफिया इण्डिका Vol १४ पृ १६७ १७०

(16) Vol. १५ पृ० ११-४० श्लोक ७ ६

(17) राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट १९११ पृ० २
एपिग्राफिया इण्डिका Vol १४ एवं १५ में उक्त लेखों को सम्पादित करते हुए श्री सरकार द्वारा दी गई मान्यता एवं पुजेव प्लेट पर उनका लेख (Vol XXX अगद० १९५३)

(18) एपिग्राफिया इण्डिका Vol XXX जनवरी १९५३ पृ० १-१

(19) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली Vol XXXV No. 3 सितम्बर १९५९ पृ० २२७ में डा० दशरथ शर्मा का लेख

है कि राजा भेत्ति के दानपत्र में प्रयुक्त तिथि सं० ७१ हर्ष संवत् की तिथि ६७१ ई० आती है। इस संवत् में अस्वयज संवत्सर नहीं था। हर्ष संवत् के प्रचलन की तिथि में ही विवाद[20] है और श्री सरकार इन तिथियों को हर्ष संवत् ही मानते हैं। श्री सामर ने इस संवत् के सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वे इसे[21] बाप्पारावल के राज्यारोहण की तिथि से सम्बन्धित मानते हैं। यह सिद्धान्त भी गलत प्रतीत होता है। बाप्पारावल की तिथि से तालमेल बिठाने के लिए इन्होंने बाल म की लिपि को भी ८वीं शताब्दी का बतलाया है जो भी गलत है क्योंकि लिपि से ही सामान्यतः राजा का काल निर्धारण नहीं किया जा सकता। सामोली के शिलालेख की लिपि अन्य[22] समसामयिक शिलालेखों से काफी विकसित प्रतीत होती है अतएव इन्हें हर्ष संवत् की मानना ही अधिक उपयुक्त है। इनका वंश क्रम इस प्रकार हो सकता है —

(20 डी० सी० सरकार इसे ६०६ ई० से और मजुमदार इसे ६१२ में लागू हुआ मानते हैं [जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री XXXVIII भाग १ पृ० ६०५ के फुटनोट १ में]

(21) उक्त XL भाग II अगस्त १९६२ पृ० ३४८-३५०

(22) एपिग्राफिया इण्डिका भाग ४ पृ० २९-३१

ये राजा भाहड़ और भागदा के प्रारम्भिक गुहिल शासकों से निःसन्देह भिन्न थे क्योंकि उस समय मेवाड़ में जो शासक राज्य कर रहे थे उनमें से एक का भी नाम इनसे मिलता नहीं है। इनके लेखों में मेवाड़ के शासकों का स्पष्टतः उल्लेख नहीं होने से दानों में क्या सम्बन्ध थे यह बतलाना कठिन है।

परमारों का अधिकार

इन कल्याणपुर के गुहिल राजाओं को मारने पर परमारों ने किया प्रतीत होता है। वागड़ के परमार वंशी राजा मालवे नरेश के वाक्पतिराज के दूसरे पुत्र डम्बरसिंह के वंशज थे। सम्भवतः वाक्पतिराज ** ने इस प्रदेश को जीतकर अपने पुत्र को जागीर में दे दिया था। इन राजाओं ने कल्याणपुर से राजधानी हटाकर अर्थूणा में स्थापित की जहां से इस वंश के कई राजाओं के कई शिलालेख भी मिले हैं। डम्बरसिंह के पश्चात् धनिक चच्च कंकदेव चंडप सत्यराज लिम्बराज मंडलीक चामुण्डराज और विजय राज नामक राजा हुए। विजयराज** के शिलालेख वि सं ११६६ के मिले हैं और इसके पश्चात् इस वंश के शासकों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि मालवा-विजय के साथ-साथ गुजरात के सोलंकियों ने वागड़ भी अपने अधिकार में कर लिया था। सिद्धराज जयसिंह की अवन्ति विजय वि० सं० ११९० के आसपास ...नी जाती है। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका उत्तराधिकारी कुमारपाल हुआ जिसे हटाने के लिए कुछ सीमावर्ती राजाओं ने प्रयास किया था। इनमें अजमेर का राजा अर्णोराज नाडोल का

---

(23) ओझा-राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ० २१
" डूंगरपुर राज्य का इति पृ २१
गंगोली-हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टीज पृ० ११०

(24) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली XXXV No. I मार्च १९५९ में सुन्दरम् का लेख।

(25) जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० १२-१५

चौहान शासक रायपाल और आबू का परमार राजा विक्रमसिंह[26] मुख्य थे। ये चाहड़ को शासक बनाना चाहते थे। वि० सं० १२०१ के आसपास आबू के निकट युद्ध में कुमारपाल की विजय हुई। उसने अजमेर तक पीछा किया किन्तु अजमेर विजय नहीं कर सका। इस प्रकार संघर्षमय स्थिति का लाभ उठाकर आसपास के सीमावर्ती राजाओं ने भी अपने-अपने क्षेत्र का विस्तार करने के लिए प्रयास किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

मत्तपट्टवंशी गुहिल

जैसा की ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कि मत्तपट्टवंशी गुहिल राजाओं का अधिकार प्रारम्भ में चाकसू के आसपास था। कालान्तर में ये लोग मालवा में जा बसे। धार के पास इ गोदा के वि० सं० ११९० के दानपात्र में मत्तपट्टवंशी ३ गुहिल राजाओं का उल्लेख है। इनके नाम हैं पृथ्वीपाल तिहुणपाल और विजयपाल[27]। एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इनके विरुद "महाराजाधिराज परम भट्टारक परमेश्वर" दिया हुआ है। अतएव पता चलता है कि परमार सोलंकी संघर्ष का लाभ उठाकर इन राजाओं ने भी स्वाधीनता की घोषणा कर दी हो। मालवे के घटनाचक्र में कुछ समय पश्चात् महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। यशो वर्मन परमार के पुत्र जस्साक ने सोलंकियों को निकाल कर वापस अधिकार कर लिया। आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहित प्रद्युम्नचरित नामक एक अपभ्रंस ग्रंथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि बागड़ के सीमावर्ती बाह्मणवाड़ में उसका राज्य विद्यमान था और वहां उसका सामन्त गुहिल मल्लिक राज्य[28] कर रहा था। इससे स्पष्ट है कि जस्साक ने मालवे का अधिकांश भाग अपने अधिकार

(26) अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० ५२
एपिग्राफिया इण्डिका भाग २ पृ० २००

(27) इण्डियन एण्टिक्वेरी Vol IV प० ५५-५६ की पंक्ति १ से ३

(28) बाह्मणवाड़-णामे पट्टणु
अरिणरणाह–सैण–रण वट्टणु ॥

में कर लिया था। इसे कुमारपाल ने वि० सं० १२०८ में दूर किया था और मालवे का अधिकांश भाग अपने अधिकार में कर लिया था। ये इ मोवा के मनु पट्टन की गुहिल भी कुमारपाल के सामंत रहे प्रतीत होते हैं। । इनका बागड़ प्रदेश में प्रवेश कब हुआ था यह निश्चित करना कठिन है। श्री सुन्दरम् ने अपने लेख 'दी अकलेश्वर'[19] आफ परमार्स एट बागड़' में यह व्यक्त किया है कि सिद्धराज का तलवाड़ा (बागड़) में शिलालेख भी मिला है। इसके वहां से हट जाने पर विजयपाल गुहिलोत ने वहां अधिकार कर लिया प्रतीत होता है। इसके पश्चात् इसका पुत्र सुरपाल शासक हुआ जिसका वि० सं० १२१२ का शिलालेख भी मिल चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये गुहिलोत मालवे पर चालुक्य आक्रमण के समय उनकी तरफ नहीं रहे हों क्योंकि वि० सं० ११६० के इ मोवा के लेख के जो विरुद अंकित हैं वे स्पष्टतः ध्वनित करते हैं कि वे उस समय तक इनके आधीन नहीं थे। अतएव कुमारपाल के समय में अधीन होकर मालवे स बागड़ की तरफ आये हों यही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

सुरपाल का पुत्र अमृतपाल था। इसके पश्चात् इस शाखा के अमृतपाल का वि सं० १२४२ का ताम्रपत्र मिला है। इस प्रकार इनका वंश क्रम इस प्रकार है —

जो कुअर-चरिउ जय काव्हो ।
रयणधोरियहो सुअहो मन्नाल हो ।।
जासु मित्त् कुम्मणु मण-धम्मणु ।
चयिउ गुहिल उत्त् वंहि मस्कस् ।।
प्रद्युम्न' चरित्र" की प्रशस्ति (आमेर शास्त्र भण्डार)

(19) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली XXXV No. 1 मार्च १९५९ पृ ९११

सामंतसिंह का वागड़ पर अधिकार

सामंतसिंह चित्तौड़ का शासक था जिसे कीतू सोनगरा ने मेवाड़ से निष्कासित कर दिया था। आबू के अचलगढ़ के वि० सं० १३४२ के शिलालेख में इस सामंतसिंह के लिए वर्णित किया है कि क्षेमसिंह के पश्चात् वह शासक हुआ, जिसने उस पृथ्वी को कभी[30] गुहिलवंश का वियोग नहीं देखा शत्रु के हाथों से वापिस हस्तगत कर लिया। इससे स्पष्ट है कि सामंतसिंह के हाथों से मेवाड़ चला गया था। इस घटना की पुष्टि आबू की ही १२८७ वि० की प्रशस्ति से होती है, जिसमें परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन के लिये लिखा है कि उसने सामन्तसिंह और गुजरात के राजा के मध्य हुए युद्धों[31] में गुजरात के राजा की रक्षा की। सामन्तसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १२२८ का गोगुन्दा के पास पंटाकी माता के मन्दिर[32] का है। इसके पश्चात

(30) ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पृ १४७)
समरसिंह का आबू का शिलालेख वि० सं १३४२ श्लोक ३७, कुंभलगढ़ प्रशस्ति श्लोक सं ११ एवं ४०

(31) आबू की प्रशस्ति वि० सं०१२८७ [एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द ८ पृ० २११] का श्लोक २८/नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष १ अंक १ पृ० २५

जगत का[33] वि० सं० १२२८ का लेख है। अत एव इसके पश्चात् ही कीतू सोनगरा ने उसे मेवाड़ से निकालने में सफलता प्राप्त की होगी। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में इसका स्पष्टतः[34] उल्लेख है। इस कीतू सोनगरा का कोई शिलालेख मेवाड़ से प्राप्त नहीं हुआ है। वि० सं० १२३६ के घण्टिमामाता के मन्दिर के लेख में केल्हणदेव का उल्लेख है जो उसका बड़ा भ्राता था। इस समय यह तक नाडोल के राज्य में उनका सहायता दे रहा[35] था। इसके पश्चात वि० स० १२३६ में उसके पुत्र समरसिंह का उल्लेख[36] है। अतएव प्रतीत होता है कि वि स० १२३६ के लगभग ही उसने मेवाड़ पर अधिकार किया होगा। सामन्तसिंह का भी बागड़ में वि० स० १२३६ के लगभग अधिकार हो गया था इसकी पुष्टि डूंगरपुर राज्य के सोलज ग्राम से प्राप्त[?] वि० स १२३६ के एक शिलालेख से होती है। इसमें स्पष्टतः वहाँ सामन्तसिंह को शासक के रूप में उल्लेखित किया गया है। इस

---

(32) वरदा—जुलाई १९६२ पृ ८ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली जुलाई-सितम्बर १९६१ पृ २१५–२१६ जनरल ओरियंटल इन्स्टिट्यूट बड़ोदा सित० १९६४ पृ ७६

(33) संवत १२२८ वरिषे फाल्गुन—
सुदि ७ गुरौ श्री अम्बिका
देवी महाराज श्री सामन्तसिंह देवेन.... ... .
[जनरल ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट बड़ोदा सित०१९६४ पृ० ७६]
नागरी प्रचारिणी पत्रिका अं क १ प २७

(34) कुंभलगढ़ प्रशस्ति का श्लोक सं १६ एवं ४०

(35) नाहर जैन लेख संग्रह भाग १ पृ ११८

(36) वही भाग १ पृ० २१८ एपिग्राफिया इण्डिका भाग १ पृ० ५२–५४

(37) राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट १९१४–१५ पृ० ३ भण्डार की लिस्ट सं० ११२ ओझा—डूंगरपुर राज्य का इतिहास–

सामन्तसिंह ने वहां भूतपाल के पुत्र अनंगपाल या उसके भाई अमृतपाल से शासन छीना होगा।

सामन्तसिंह का राज्य बागड़ में अल्पकालीन ही रहा। उसे गुजरात के राजा ने चैन से नहीं बैठने दिया। वहां से उसे निष्कासित कर अमृतपाल को वहां का राज्य दिला दिया। इसकी पुष्टि वि० सं० १२४२ के एक ताम्रपत्र से होती है, जिसमें स्पष्टतः गुजरात के शासक[38] का उल्लेख भी है और अमृतपाल का उसके सामन्त के रूप में। श्री राम चौधरी ने सामन्तसिंह का बागड़ का राज्य छूट जाने पर गोडवाड़ में जाना वर्णित किया है और वि० सं० १२५८ के नाणेरा और सांडेराव के लेखों में वर्णित सामन्तसिंह को उससे सम्बन्धित माना है और यह भी लिखा है कि उसने बिना मेवाड़ की सहायता से नाडोल और आबू के भू भाग को अधिनस्थ नहीं किया होगा अतएव उसकी मेवाड़ छोड़ने की तिथि वि० सं० १२५८ से लेकर[39] १२६१ के मध्य मानी चाहिए। किन्तु यह तिथि स्वतः गलत साबित हो चुकी है क्योंकि इसके पूर्व के शिलालेख मथनदेव (१२३६ और १२४२ वि०) आदि मेवाड़ के शासकों के मिल चुके हैं एवं १२६५ वि० में इस क्षेत्र में विजयपाल शासक था।

सीहड़ और उसके वंशज

वि० सं० १२५१ के बड़ोदा के हनुमान की मूर्ति के लेख[40] के अनुसार अमृतपाल उस समय वहां शासक था। वि० सं० १२५१ का

---

(38) ओझा निबंध संग्रह भाग २ पृ० २०७

(39) राम चौधरी—हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ० ५४ लेकिन यह वर्णन गलत है। मथनसिंह का लेख वि० सं० १२३६ एवं १२४२ और पद्मसिंह का लेख १२४२ वि० का मिला है।

(40) 'संवत १२५१ वर्षे माह वदि १ सोमे राज अमृतपाल देव राज्ये' ओझा निबंध संग्रह भाग २ पृ० २०९

वीमड़ा ग्राम का लेख वहाँ के शिव मन्दिर से गुजरात के शासक भीमदेव[41] का मिला है। इसी का वि० सं १२९१ का आहड़ से एक ताम्रपत्र[42] मिल चुका है। आहड़ से ताम्रपत्र मिलने से स्पष्ट है कि उसके दक्षिण में स्थित वागड़ उस समय तक गुजरात वालों के अधिकार में था। आट के शिलालेख[43] में वि० सं० १२९५ का एक लेख अमृतपाल के वंशज विजयपाल का मिला है। इस प्रकार वि० सं १२९५ तक निःसंदेह इस क्षेत्र पर अमृतपाल के वंशज जो गुजरात के शासकों के *सामन्त थे शासक थे। सीहड़ और उसके पिता जयतसिंह ने यह क्षेत्र* वि० सं० १२९५ के पश्चात् ही विजय किया होगा।

सीहड़ का पिता जयसिंह या जयतसिंह[44] किस परिवार का था यह बतलाना बड़ा कठिन है। डूंगरपुर राज्य के शिलालेखों में ही भिन्न २ वर्णन हैं। वि सं १४६१ की महारावल[45] पाता के समय की एक प्रशस्ति में जो डूंगरपुर के उपर गांव के जैन मंदिर में लगी है इस सम्बन्ध में वर्णन इस प्रकार है "गुहिल वंश में बाप्पा का पुत्र खुम्माण हुआ। इसके वंश में वैरड़ वैरिसिंह और पद्मसिंह नामक शासक हुए। जैत्रसिंह ने पृथ्वी को विजय किया और सीहड़ के द्वारा

---

(41) राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९१४-१५ पृ २
(उपर्युक्त पृ २०६)

(42) ओझा निबंध संग्रह भाग ४ पृ ३५ में स्पष्टतः महाराजाधिराज परमेश्वराभिनव सिद्धराज श्री मद्भीमदेव स्व भुज्यमान मेदपाट मंडलान्तः .... वर्णित है।

(43) *राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९२६-२७ पृ ३ और वरदा* वर्ष ९ अंक १ पृ ५५/ मरुभारती वर्ष ६ अंक ३ पृ ५१

(44) सीहड़ के पिता का उल्लेख सं० १३०६ के लेख में है .... –त्, हितवंशे थे) रा० जयतसी (सिं) ह पुत्र सीहड़ पौत्र श्रीजयस्य (सिंह) देवेन कारापितं— (डूंगरपुर *राज्य का इतिहास पृ. ३६ का फुटनोट ३)*

(45) राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९१५-१६ पृ० २

यह राजवंशी हुई"। इसके विपरीत डूगरपुर के बनेश्वर के समीप स्थित विष्णु[46] मन्दिर की वि० सं० १६१७ की महारावल आसकरण की प्रशस्ति और वहीं के गोवर्द्धननाथ[47] के मन्दिर की वि० सं १६७९ की महारावल पुजा की प्रशस्ति में जयसिंह को सामन्तसिंह का पुत्र बतलाया है। मेवाड़ के शिलालेख[48] इस सीहड़ के सम्बन्ध में मौन हैं। आधुनिक लेखकों में भी ओझाजी ने जयसिंह को सामन्तसिंह का पुत्र ही बतलाया[49] है। इन्होंने नैणसी की मान्यता की ही पुष्टि की है। राम चौधरी ने जयतसिंह को जयसिंह से सम्बन्धित माना[50] है जो मेवाड़ में वि०सं १२७०—१३०८ तक शासक था। इसकी पुष्टि में इन्होंने चीरवा के लेख का यह अंश दिया है जिसके अनुसार अर्थुणा के युद्ध में मेवाड़[51] की सेनायें लड़ी थीं।

इस सम्पूर्ण सामग्री को देखने से हम इस परिणाम पर तो आसानी से आ जाते हैं कि सीहड़ भी मेवाड़ के राजवंश से सम्बन्धित

---

(46) सामन्तसी (सिंह) रा० (रावल) ११ जीतसी (जयतसिंह) रा० १२ सीहडदेव (देव) रा०————— (ओझा निबन्ध संग्रह भाग २ पृ २०६)

(47) सामन्तसिंहोस्य विभुर्बिभर्ये (हि) । (५१) तस्य (श्री) तसिंह तनय प्रथेरे य एव कोर्कं सकर्क बिभर्ये (हि) तस्य सिंहल देवोऽभूत्—(उपर्युक्त)

(48) राज प्रशस्ति में समरसिंह के पुत्र का नाम कर्ण दिया है जिसके ज्येष्ठ पुत्र माहप को डूगरपुर राज्य का संस्थापक बतलाया है कर्णसिंहो माहपराजकोऽभवत्स डूगरा तु पुरे नृपो बभौ" लेकिन यह गलत है।

(49) ओझा—डूगरपुर राज्य का इतिहास अध्याय ४ पृ ४४ से ५१

(50) राम चौधरी—"फ्लुअक्टेशन आफ गुहिल पावर इन बागड़" नामक लेख और हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ ५४

(51) रत्नानुजोस्ति यदिरा वाप्यस्मातवीरसुविचार ।
मदन प्रसमयकल सतत कृष्णस्टजम कदन ॥२७॥

था। इसके पूर्वज 'आहड़ा भी कहलाते थे क्योंकि ये आहड़ से आये थे। अब प्रश्न सीहड़ के पिता जयसिंह के सम्बन्ध में है। वि० सं० १२५१ के लेख में पद्मसिंह और जयसिंह का उल्लेख होने से इसे मेवाड़ का राजा जैत्रसिंह मान सकते हैं। इसी शासक ने मेवाड़ वालों को गुजरात के राजाओं की अधीनता से मुक्त कराया था। समसामयिक कृति "हमीर मद मर्दन" में वीर धवल का यह[52] कथन उल्लेखनीय है कि गुजरात के राजा की सहायता मेवाड़ के जयसिंह ने नहीं की थी और इसे अत्यन्त अभिमानी भी वर्णित किया है जिसे अपनी तलवार के बल पर बड़ा घमण्ड था। इसको चीरवा और घाघसा के लेखों[53] में भी इसी प्रकार से वर्णित किया है कि इसने गुजरात के राजा को हराया था।

सामन्तसिंह का राज्य बागड़ में अल्पकालीन ही था। अतएव उसके वंशजों का वहां स्थायी रूप से रहना संभव प्रतीत नहीं होता। मेवाड़ में भी उसके छोटे भाई के वंशज ही रह गये थे। इसके साथ ही साथ सामन्तसिंह का अन्तिम लेख वि० सं० १२३६ का है, जबकि सीहड़ का अन्तिम लेख वि० सं० १२९१ का। इस प्रकार दोनों में अन्तर भी अपेक्षाकृत अधिक रहता है। अतएव जब तक अधिक विश्वसनीय समसामयिक कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हो जावे, सीहड़ का सम्बन्ध सामन्तसिंह से स्थिर नहीं किया जा सकता है।

अतएव जैत्रसिंह को सीहड़ का पिता मानना चाहिये और उसका वंशक्रम इस प्रकार से स्थिर किया जा सकता है —

यः श्री जैत्रसिंहकार्णमनुगुणकरणागणे अहरम् ।
चम्बलमुद्रिकेन सर्व प्रकटवतो जैत्रमल्लेन ॥२८॥ चीरवा का लेख

(53) ....प्रतिपार्थिवपुर्यामुपचलनप्रधपदविकसर्पांसमाणकृपाण-
दर्पोत्थितसमरभिन्नि मेदपाटपृथिवीललाटमण्डलं जयतले—
(हमीर मद मर्दन पृ २७)

(53) न मालवीयेन न गौर्जरेण न मारवेशेन न जांगलेन ।

जैत्रसिंह (१२७०–१३०८ वि०)

- सीहड़ (१२७७ से १२९१ वि०)
  - विजयसिंह १३०६ १३४२ वि०)
- तेजसिंह (१३०८–१३२४)
  - समरसिंह (१३३० १३५८ वि०)
- पृथ्वीदेव (१३०७ वि का समनोर का लेख

अतएव सीहड़ को जिसे ख्यातों में डूंगरपुर राज्य का संस्थापक माना गया है और जिसके बाद वंशावली बराबर मिलती है, वहां के गौहिल राजवंशों का संस्थापक माना जा सकता है।

[वरदा के वासुदेव शरण
अग्रवाल स्मृति अंक में
प्रकाशित]

—※—

स्त्रीत्वाभिमायेन कदापि मानो म्लानि न निम्येवनिपरस्य यस्य ॥
(चीरवा का लेख)

श्रीमत्तुरुष्कसमारुत्तुरुष्कशाकम्भरीश्वरैयस्य ।

चक्रे न मानभंग स स्त्यो जयतु जैत्रसिंह नृप ॥८॥

वरदा (मासिक का लेख वर्ष ५ अंक १ में आचार्य परमेश्वर सोलंकी द्वारा सम्पादित) गुजरात के राजाओं से युद्ध आगे भी चलता रहा प्रतीत होता है। चीरवा के लेख में बाला का कोटड़ा में राणक त्रिभुवन के साथ युद्ध करते हुए वीरगति पाना लिखा है (श्लोक १६)

महाराणा रायमल और सुल्तान गयासुद्दीन | ३

महाराणा रायमल महाराणा कुंभा का पुत्र था। इसका राज्यारोहण सं० १५३० के लगभग है। कुंभा की हत्या के पश्चात ऊदा ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते उसका उत्तराधिकारी बना था लेकिन पितृहत्यारा होने से मेवाड़ के जागीरदार उसके विरोधी हो गये और रायमल को जो उस समय ईडर में रह रहा था मेवाड़ पर अधिकार करने को बुलाया। कुछ युद्धों के पश्चात् वह उनको हटाकर मेवाड़ का राज्य पाने में सफल हो गया और ऊदा अपने परिवार के साथ भागकर माण्डू के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी की शरण में चला गया।[1]

सुल्तान गयासुद्दीन और फारसी तवारीखें

सुल्तान गयासुद्दीन मोहम्मद खिलजी का ज्येष्ठ पुत्र था और अपने पिता के बाद मालवे का सुल्तान बना था। फारसी तवारीखों में इसका वर्णन अत्यन्त संक्षेप में लिखा मिलता है। मासीरात-ए-मुस्तफी के अनुसार सुल्तान अपने महल से ही अपने शासन काल में केवल दो बार बाहर निकला था।[2] एक बार जौनपुर में एक अनिर्णीत आक्रमण के लिए और दूसरी बार एक तालाब और बाग देखने के लिये। अन्यथा आजीवन महल में ही रहा। फरिश्ता भी इसी[3] प्रकार

---

1 ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० १२७-२९। और वीरविनोद भाग १ पृ० ३१८ दे—मिडीवल मालवा पृ० २२१

2 जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री दिसम्बर १९६२ पृ० ७५।

3 बिग्स—तारीख ए-फरिश्ता का अनुवाद भाग ४ पृ० २३६ २३९

का वर्णन करता है। वह लिखता है कि राजगद्दी प्राप्त करते ही सुल्तान ने एक राजसभा सम्पन्न की और उसमें घोषणा की कि वह अपना अधिकांश समय अब शांतिपूर्ण ढंग से ही व्यतीत करेगा और महल से बाहर ही नहीं आवेगा। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र नसीरुद्दीन के हाथों राज का सारा काम-काज सौंप दिया। इन तवारीखों से यही सिद्ध होता है कि वह आजीवन महल में ही बन्द रहा और उसने साम्राज्य की रक्षा के निमित्त कोई कदम नहीं उठाया। परन्तु फारसी तवारीखों के अतिरिक्त समसामयिक कई सामग्री ऐसी उपलब्ध हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल तक इस सुल्तान का महाराणा रायमल के साथ संघर्ष चलता रहा था और वह स्वयं सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने भी आया था एवं इन तवारीखों का वर्णन अतिरंजित है।

गयासुद्दीन का मेवाड़ पर आक्रमण

गयासुद्दीन ने महाराणा उदा के पुत्रों को मेवाड़ में पुनर्स्थापित करने के लिए वि० सं० १५३० में चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई का वर्णन फारसी तवारीखों में तो जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है बिल्कुल नहीं है किन्तु इसके विपरीत डूंगरपुर और दक्षिण द्वार के समसामयिक लेखों में इसकी चढ़ाई का उल्लेख है। विशेष उल्लेखनीय यह है कि दोनों लेखों में सुल्तान के व्यक्तिगत रूप से आने का उल्लेख है। डूंगरपुर का जो यह लेख वि० सं० १५३० का है जो वहां के सुरहपोल पर लगा हुआ है। इसमें लिखा है कि जब सुल्तान गयासुद्दीन ने आक्रमण किया और नगर को नष्ट किया तब राउत काला जो भिलिया का पुत्र था अपना कर्तव्य समझ कर आक्रमणकारी से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त[४] हुआ। सुल्तान डूंगरपुर से मेवाड़ के पश्चिमी भाग में होता

---

४ "संवत् १५३० वर्षे शाके १३९५ प्रवर्तमाने चैत्रमासे कृष्णपक्षे षष्ठयां तिथौ गु-रु दिने भीलिया भाला सुत राउतकाला मंडपाचलपति सुरताण ग्यासदीन आवि-डूंगरपुर भाज तई स्वामि न इच्छति बांधउ कुल मार्ग अनुपाल्या

हुआ चित्तौड़ तक बढ़ आया। उस समय बड़ा भयंकर युद्ध हुआ जिसमें सुल्तान की हार हुई और वह लौटने को बाध्य हुआ। इस घटना का उल्लेख दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ की प्रशस्ति में है जिसमें उल्लेखित है कि महाराणा ने ग्यासशाह के मद को चूर कर दिया।[5] इस युद्ध में गोरी जाति के एक वीर राजपूत ने विशेष कौशल दिखाया और दुर्ग के एक शृंग पर जिसे आगे चलकर उसके नाम से ही वीर शृंग कहा जाने लगा था वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए परलोक सिधारा।[6] इस घटना से पुष्टि होती है कि सुल्तान ने चित्तौड़ पर आक्रमण अवश्य किया था किन्तु उसकी हार हो गई थी। इस युद्ध में सुल्तान का [illegible] सेनापति बहरूस मुल्क भी मारा था।

पूर्वी राजस्थान की समस्या

महाराणा रायमल कुंभा के समान न तो कुशल राजनीतिज्ञ था और न अपने पुत्र सांगा के समान वीर। उसके शासन काल में मेवाड़ में घरेलू समस्यायें इतनी अधिक पैदा हो गई थी कि वह अपने पिता और पुत्र की तरह पूर्वी राजस्थान में बढ़ते हुए मुस्लिम प्रभाव के लिये कुछ भी नहीं कर सका। महाराणा कुंभा के अन्तिम दिनों में ही इस क्षेत्र पर मुस्लिम प्रभाव बढ़ना शुरू हो गया था।

वीर पतेन प्राण छोड़ी सूर्य मंडल भेदी सायोज्य मुक्ति पामी— डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ० ९९।

5 सन्नायमपि हलाहलि प्रतिबद्धग्यासभ्याकुलं
यस्माद्वाविबलमेकलकुलं विस्फारवीरारवं।
तन्मार्ग तुमलं महासिहस्तिमि श्रीचित्रकूटे पच
द्गाय व्याप्तपकेसरं व्यरचयत् श्री रायमल्लो नृप ॥९८॥
(भाव नगर इन्स्क्रि० पृ० १२१)

6 कश्चिद्गौरो वीरवर्यो कोपं युद्धेऽस्मिन् प्रत्यहं संजहार।
तस्मात्तन्नाम कार्य ममार प्राकारोपरिचित्रकूटकश्च मं ॥९९॥
(उपरोक्त)

आमेर टोडा आदि भागों से उसने मुसलमानों को हटाकर स्थानीय राजपूत राजाओं को फिर से स्थापित करा दिया था।[7] लेकिन वि० सं० १५१५ के पश्चात् नैणवा रणथम्भोर टोंक आदि का भाग उसके हाथ से चला गया था और यहाँ मालवे के सुल्तान का प्रतिनिधि अल्लाउद्दीन उस समय शासक था।[8] इसका उल्लेख उस समय लिखी गई ग्रन्थप्रशस्तियों में मिलता है। इस अल्लाउद्दीन को वि० सं० १५३३ (१४७६ ई०) के पूर्व यहाँ से हटा दिया प्रतीत होता है क्योंकि इसके बाद की सारी

श्लोक सं ७१ भी द्रष्टव्य है।
चञ्चोरकमहीधरं धरणिभृद्विहितक्रमा-
वटलक्ष-किद् मसमावृतेऽस्ततम् ।
विभिद्य भिदुराग्रिभिर्वपुष्पकमवीरणी—
क्वचित्परिमोपके समिति राजमरको विभुः ॥७२॥ (उपरोक्त)

7 आमदाद्रिदस्नेम दारुणं कोटडाक्रमह् केकीकेसरी.........
कुम्भलगढ़प्रशस्ति का श्लोक सं० ॥२६२॥
तोडामंडलमहीभ्य सहसा जित्वा सर्वदुर्गमयं ॥१५०॥
एकलिंग माहात्म्य

8 नरसेन द्वारा लिखित 'सिद्धचक्र कथा' की प्रशस्ति में संवत् १५१५ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १५ रवौ नैणवाह पत्तने सुरत्राण अल्लावदीण राज्ये' .... वर्णित है। कातन्त्ररूप माला की प्रशस्ति (ह० प्र सं० २१४४ आमेर शास्त्र भंडार) की प्रशस्ति में भी इसी शासक का उल्लेख है संवत् १५२४ वर्षे कार्तिक सुदि ५ दिने श्री टोंकपत्तने सुरत्राण अल्लावदीन राज्य'प्रवर्तमाने श्री मूल संघे बलात्कार गणे' इसी प्रकार नैणवा की वि सं० १५२८ की ग्रन्थ प्रशस्ति में भी ठीक इसी प्रकार का उल्लेख है। संवत् १५२८ वर्षे श्रावण सुदी १ बुधे श्रवण नक्षत्रे शुभनाम योगे श्री नयनवाह पत्तने सुरत्राण अल्लावदीन राज्य प्रवर्तमाने ' (नय कुमार चरित्र की प्रशस्ति)

प्रशस्तियों में स्वयं गयासुद्दीन का नाम मिलता है।[9] रणथंभोर पर फिरोजखां का राज्य था। समसामयिक लेखक 'मिहाब हकीम' ने भी इसका उल्लेख किया है। वि० सं० ८७० (१४६५ ई०) में जब वह रणथंभोर आया तब वहां फिरोज खां शासक था। यहां से वह मांडू गया। गयासुद्दीन के राज्यारोहण के बाद भी रणथम्भोर इसी फिरोज खां को जागीर में दिया गया था। मालवे के सुल्तान के साथ २ दिल्ली के बादशाह भी इस क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने को उत्सुक थे। वि० सं १५३९ (१४८२ ई) में सुल्तान बहलोल लोदी ने रणथंभोर के समीप स्थित मामनपुर पर आक्रमण किया था।[10] गयासुद्दीन ने चंदेरी के मुक्ती शेरखां को उससे युद्ध करने को कहा जिसने युद्ध में बहलोल को हरा दिया। इस प्रकार घटनाचक्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और इस क्षेत्र में मालवे के सुल्तान का एकाधिपत्य स्थापित हो गया।

बून्दी और टोडा की समस्या

पूर्वी राजस्थान में बून्दी और टोडा उस समय दो महत्वपूर्ण हिन्दू राज्य थे। मोहम्मद खिलजी ने भी यहां के शासकों को हराया

9 *आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहित धन्य कुमार चरित की* प्रशस्ति संवत् १५३१ वर्षे पोषसुदी ३ गुरौ श्रवण नक्षत्रे श्री मयनपुरे सुरताण गयासुदीन राज्ये प्रवर्तमाने श्री मूल संघे ... ... (डा कासलीवाल प्रशस्ति संग्रह पृ० ११) मासिर-इ मोहम्मद शाही पत्र ९७ (मिडिवल मालवा पृ० ४० से उद्धृत)

10 डे-*मिडिवल मालवा* पृ०। तारीख -इ फरिश्ता का ब्रिग्स का अनुवाद जिल्द ४ पृ० २३७-२३८ जरनल आफ इंडियन हिस्ट्री दिसम्बर १९६२ पृ० ७५

11 चन्देरी के सम्बन्ध में कई शिलालेख और ग्रन्थ प्रशस्तियां चन्देरी से मिली हैं। "श्रियादस्य" नामक एक ग्रन्थ की वि०

था जिन्हें कुम्भा ने वापस संस्थापित कर दिया था। टोडा का शासक राव सुरत्ताण या सुरसेण था। इसकी पुत्री ताराबाई का विवाह मेवाड़ के महाराणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज के साथ हुआ था। टोडा से इसे वि० सं० १५३७ (१४८० ई०) के पूर्व ही अवश्य निकाल दिया था। क्योंकि यहां से प्राप्त आदि पुराण की एक प्रशस्ति में शासक का नाम गयासुद्दीन दिया हुआ है।[12] राव सुरत्ताण या सूरसेण को मेवाड़ में पुर ग्राम जागीर में दिया था। वि० सं० १५५१ (१४९४ ई०) की लक्ष्मीसार[13] नामक एक ग्रन्थ की प्रशस्ति उस समय की देखने को मिली है जिसे मैंने अनेकान्त पत्रिका में अलग से प्रकाशित करा दी है। उसे बदनोर इसके बाद दिया था। सूरसेण को यद्यपि मेवाड़ की ख्यातों के अनुसार पृथ्वीराज ने स्थानीय शासक लल्ला खां पठान को हराकर वापस टोडा दिया था किन्तु यह घटना वि०सं० १५५१ के पश्चात् ही हुई थी। अब तक इसकी वि० सं० १५८० के पहले की कोई टोडा से प्रशस्ति नहीं मिली है। यह उस समय काफी वृद्ध हो चुका था। इसका पौत्र रामचन्द्र चाटसू में वि० सं० १५९०–९४ तक शासक था और महाराणा सांगा का सामन्त था। राव भाण को भी बून्दी से गयासुद्दीन ने निकाल

सं० १५११ की प्रशस्ति में राजाधिराज मांडोगढ़ दुर्गे श्री सुरत्ताण गयासुद्दीन राज्ये वर्तेरी देशे महाबीर थान……

12 तेरापंथी जैन मंदिर जयपुर में आदि पुराण (हस्त०) की वि० सं० १५३७ की प्रशस्ति उल्लेखनीय है संवत् १५३७ फाल्गुण सुदि ६ रवि वारे उत्तरा–नक्षत्रे सुरत्ताण ग्यासुद्दीन राज्य प्रवर्तमाने टोडागढ़ दुर्गे पार्श्वनाथ चैत्यालये (राजस्थान के जैन भंडारों की सूची भाग २ पृ० २०६)

13 दिरधीचन्द जी के जैन भंडार लक्ष्मीसार की हस्त० प्रति में प्रशस्ति इस प्रकार है संवत् १५५१ वर्षे आषाढ़ सुदी १४ मंगल वासरे ज्येष्ठा नक्षत्रे श्री मेदपाटे श्रीपुरनगरे श्री महाराणाकुलवंशे राजाधिराज रावश्रीसूर्यसेनराज्य प्रवर्तमाने (उपरोक्त भाग ३ पृ० २१)

इस प्रशस्ति को मैंने सम्पादित करके अनेकान्त दिसम्बर १९६६ के अंक में प्रकाशित भी करा दिया है।

किया था उसने भी मेवाड़ में महाराणा रायमल के यहाँ आकर के शरण भी की। इसे कुछ समय तक भीलवाड़ा नगर[14] भी जागीर में दिया हुआ था। वि० स० १५५१ (१५०२ वि०) की पट कर्मोपदेश म ला की एक प्रशस्ति में इसका उल्लेख है। समसामयिक गुणपुराणरत्नाकर नामक जैन ग्रंथ जिसे वि० स० १५४१ में विरचित किया गया था में प्रसगवश हाड़ोती के लिये उल्लेखित है कि यह मालवे के राजा के अधीन था।[15] वि० स० १५४९ में लिखे सुकुमाल चरित नामक ग्रंथ की प्रशस्ति से पता चलता है कि बारां में सुल्तान गयासुद्दीन का राज्य था।[16] इस प्रकार महाराणा रायमल को सुल्तान गयासुद्दीन के विरुद्ध इन राजाओं को सहायता देनी पड़ी। बून्दी राज्य के खटकड़ ग्राम में उस समय हाड़ा शासक विद्यमान थे।[17] रावभाण की निधन तिथि वि० सं० १५५ मानी जाती है और इसके बाद नारायण दास वहाँ शासक हुआ था। इसका शासन काल अल्पकालीन ही था क्योंकि खजूरी गांव के लेख में वि० स० १५६३ में सूरजमल बूंदी का शासक

14 पट् कर्मोपदेशमाला ग्रं थ की प्रशस्ति में 'संवत् १५५१ वर्षे चैतसुदी १३ शनिवासरे शतभिषा नक्षत्र राजाधिराज श्री भाण विजयराज्ये भीलोड़ा ग्रामे श्री चन्द्रप्रभ चैत्यालये.........
(उपरोक्त भाग १ ० ७२)

15 हाड़ावतीमालव देशनायक—
प्रजाप्रियाऽऽहमद मुख्यमन्त्रिणा।
श्रीमध्यपस्माधर भूमिवासिना
संघाधिनायम च चन्द्रसाधुना ॥१८॥ (गरपुण रत्नाकर काव्य)

16 'संवत् १५४६ वर्षे ज्येष्ठ सुदी ६ बुधवासरे पुष्यनक्षत्रे बारा नदी नगर्यां सुरत्राण ग्यासुदीन राज्ये श्री मूलसंघे........."
(प्रशस्ति संग्रह पृ १६५)

17 संवत् १५६० वर्षे महासुदी ११ सोमे श्री खटकड़ दुर्गे राव श्री अक्षयराज कंवर नरबद राज्य प्रवर्तमाने.................
(उपरोक्त प० ६१)

हो चुका था।[18] अतएव पता चलता है कि वि० सं० १५६० के लगभग यह भू-भाग बूंदी वालों ने वापस हस्तगत कर लिया होगा।

अजमेर क्षेत्र

अजमेर नरेना सांभर आदि के क्षेत्र पर भी गयासुद्दीन ने अधिकार कर लिया था। अजमेर में उस समय उस्ताद-आज़म जिसका पूरा नाम उस्तादुलआज़म कुतलग इ मुअज्जम है जो गयासुद्दीन का मुक्ती था जिसका उल्लेख सादूर (मध्य प्रदेश) से प्राप्त एक शिलालेख में है जिसमें यह[19] वर्णित किया है कि उक्त अधिकारी हि० सं० ८८८ (१४८३ ई०) में अजमेर से वहां अपने पुत्रों की शादि के लिये गया था उसके साथ ७०० सैनिक भी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि बहलोल लोदी के आक्रमण के समय इसने वहां सैनिकों के सहित प्रयाण किया। इसके बाद मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार वहां मल्लूखां (मलिक युसुफ) वि० सं० १५४० में शासक था। इसने राव सातल के भाई वरसिंह को अजमेर बुलाकर धोखे से पकड़ लिया। इस पर राठौड़ों ने उस पर आक्रमण किया उस समय तो उसने वरसिंह को छोड़ दिया पर शीघ्र ही मेड़ता पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि अजमेर मेवाड़ के महाराणा के अधिकार में उस समय नहीं था और यह गयासुद्दीन के साम्राज्य का भू-भाग था। भीनमाल के पवारों ने इस क्षेत्र पर रायमल के अन्तिम दिनों में अधिकार कर लिया प्रतीत होता है। क्योंकि कमचन्द पवार के यहां रायमल के पुत्र सांगा ने शरण ली थी।[21] इसी प्रकार सीकर

---

18 अनेकगिरिदुर्गमयं जयति यंत्रमार्ग यक

स पट्टपुरराधिपो नमति वक्षो य सदा

कुमार इह भक्तिमिमजति चण्डसेन पुनः

स मुख्यापतिका विभु जयति पूर्वमस्कोपि च ॥ १ ॥

(बूंदी का लेख)

19 इपिग्राफिया इंडिका (परेशियन अरेबिक सप्लीमेन्ट) १९५४ पृ० ६१

20 रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृ० १०५

21 ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० ३४२-४३

तक भी गयासुद्दीन का शासन रहा प्रतीत होता है वहां से[22] वि० सं० १५३५ का एक शिलालेख गयासुद्दीन के राज्य का भी प्राप्त हो गया है। चाटसू में उसका सामन्त राव भवर कछावा वि० सं० १५५१ में शासक था।

मांडलगढ़ का संघर्ष

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के अनुसार महाराणा[23] रायमल के समय गयासुद्दीन के सेनापति जफरखां ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी। यह मेवाड़ के पूर्वी भाग को लूटने लगा। इसकी सूचना पाते ही महाराणा ने अपने कुंवर पृथ्वीराज जयमल पत्ता रामसिंह कांधल चूडावत सारंगदेव अज्जावत कल्याणमल खीची आदि कई सरदारों को उससे लड़ने भेजा। मांडलगढ़ के पास युद्ध हुआ वहां घमासान युद्ध के पश्चात जफरखां को हराकर लौटना पड़ा। महाराणा ने भागती हुई सेना का पीछा किया और हाड़ोती में स्थित खेराबाद तक बढ़े चले गये वहां और युद्ध हुआ व वहां भी मेवाड़ की सेना की विजय हुई।

इस प्रकार मेवाड़ के महाराणा रायमल और गयासुद्दीन के मध्य मेवाड़ में दो बार युद्ध हुए जिसमें महाराणा रायमल की ही जीत हुई फिर भी वह उसकी बढ़ती हुई शक्ति को खतम नहीं कर सका। उसका साम्राज्य राजस्थान के बहुत बड़े भू-भाग पर फैला हुआ था।

---

22 राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट १९१५ पृ० ४ शिलालेख नं० १

23 श्री डे ने मिडिवल मालवा में वर्णित किया है कि मांडलगढ़ महाराणा कुंभा के समय से मालवा के सुल्तान के अधीन हो गया था (पृ० ११०) किन्तु यह गलत है। गयासुद्दीन के इस प्रकार आक्रमण करने से प्रकट होता है कि यह उस समय तक मेवाड़ में ही था। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में यह प्रकार से उल्लेखित है —
मौली मडल-दुर्गमग्र्यमधिपति श्रीमेदपाटावने-
र्यद्धि प्राहसुरत्राणजफररपरीवारोस्मीररणं।

यह पहला और अन्तिम अवसर था जबकि एक लम्बे समय तक मालवे के सुल्तान का राजस्थान के इतने बड़े भू भाग पर अधिकार रहा हो। तारापुर के कुंड के लेख के अनुसार[24] सुलतान गयासुद्दीन ने अपने हाथों से साम्राज्य विस्तार किया था। रायमल जैसा कि ऊपर उल्लेखित है अपने घरेलू झगड़ों में अधिक व्यस्त होने के कारण पूर्वी राजस्थान की समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दे सका।

[राजस्थान भारती
भाग १० अंक १ में
प्रकाशित]

कठच्छेदमार्गमभिपरिस्थापितके [श्रीरायमल्लो दुर्ग
भ्यासक्षोणिपते· प्रसाग्निपतिता मालोन्नता मौलय· ॥७७॥

24 श्री मालवोत्सर्लसित मंडपदुर्ग साम्राज्यपूर्णपुरपावसुधा भिजाय प्रौढ प्रतापमित् विपुलक्ष्मी बिभाति भूवल्लभः जयति साहि गयासुद्दीन ॥ (जैन सत्यप्रकाश वर्ष १ पृ० ८४ में प्रकाशित तारापुरकुण्ड का लेख)

टोडा के सोलंकी

टोड़ा या टोड़ारायसिंह राजस्थान में टोंक जिले में स्थित है और यहां सोलंकियों का छोटा सा राज्य १५ वी और १६ वी शताब्दी में रहा था।

नैणसी के अनुसार टोड़ा के सोलंकियों में सुर्जनसास [1] हरराज सुरताण अथवा बीरा ईसरदास राव भाराथा आदि शासक हुये थे। टोड़ा आमो आदि स्थानों से प्राप्त शिलालेखों और ग्रन्थ प्रशस्तियों में जो उल्लेख मिलता है वह इससे पूर्णतया भिन्न है। इनमें से सेडसेन सूर्यसेन पृथ्वीराज रामचन्द्र परशुराम कल्याण और राव सुर्जन का उल्लेख है। इनमें एक नाम राव सुरताण और सूर्यसेन मिलता सा है जो मेवाड़ में दीर्घकाल तक रहा था।

इन सोलंकियों का मूलनिवास[2] गुजरात में था। वहां से ही इस क्षेत्र में आये हो ऐसा विश्वास किया जाता है। इनका राज्य यहां कब स्थापित हुआ था इसकी कोई निश्चित लिखी सामग्री के अभाव में बताना कठिन है। इतना अवश्य सत्य है कि १४वीं शताब्दी के पश्चात पूर्वी राजस्थान में मुख्य रूप से मालखेट बयाना मथुरा भीनमा आदि स्थानों में मुसलमान जागीरदार शक्ति बढ़ा रहे थे। कछावा भी इस समय आमेर के आस पास राज्य संस्थापना के लिए संघर्ष कर रहे थे। इसी समय के आस पास ही सोलंकियों ने टोड़ा के आस पास अपना छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया हो। प्रारम्भ के राजाओं के नाम अब तक

1 नैणसी की ख्यात भाग १ पृ० २११
2 उक्त पृ० २११

मिले नहीं हैं। टोडा से प्राप्त प्रशस्तियों में सबसे प्राचीन वि० सं० १४९२ माघ सुदि २ की सेववदेव सोलंकी की है जो जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति ग्रन्थ की है। इसका संक्षिप्त नाम टोडा है। यह महाराणा कुम्भा का समकालीन था। इसके समय में इस क्षेत्र के लिये बड़ा संघर्ष चला था। मुसलमानों ने टोडा को जीत कर सोलंकियों को निकाल दिया था। कुम्भा ने एकलिंग[3] माहात्म्य के अनुसार टोडे[4] पर इनको वापिस स्थापित किया था। वि० सं० १५१० माघ सुदि का एक लेख टोंक से खुदाई में मिली नव जैन मूर्तियों में से एक पार्श्वनाथ की चरण पीठिका पर खुदा हुआ[5] है जिसमें यहां के शासक का नाम "भुपरेन्द्र" खुदा हुआ है। यह या तो स्थानीय सोलंकी शासक होना चाहिए अथवा ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह का नाम होना चाहिए जिसे खोदने वाले ने डूंगरेन्द्र के स्थान पर "भूगरेन्द्र" खोद दिया हो। एक लेख में इसका नाम "डूंगरेन्द्र" भी कर दिया[5] है। वि० सं० १५२४ की आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहित "कातन्त्र माला"[6] की एक प्रशस्ति में टोंक के शासक का नाम अस्लाउद्दीन दे रखा है। यह नैनवां क्षेत्र का स्थानीय शासक था।[7] इसकी वि० सं० १५१५ से लेकर १५२८ तक की कई ग्रन्थ

---

3 तोडामंडलमपहीत्य सहसा जित्वा शकपुंगवं ।
वीर्याइर्पसत्तं स मत्सतुरमं श्री कुम्भकर्णो नृपः ।।१९७।।
एकलिंग माहात्म्य का राजवंश वर्णन

4 जैन शिलालेख संग्रह भाग ३ पृ० ४८३-८१

5 ग्वालियर का सं १५१० का लेख दृष्टव्य है- "सिद्धि सम्वत् १५१० वर्षे माघ सुदि ८ (भ) ग्र्म (न्या) श्री गोपगिरीमहा राजाधिराज श्री डू (डूं) गरेन्द्रदेव राज्ये ------- इसका शासनकाल वि० १४८ से था।

6 कातन्त्र माला की प्रशस्ति "संवत् १५२४ वर्षे कार्तिक सुदि ५ दिने श्री टोंक पत्तने सुरताण अस्लाउद्दीन राज्ये-------"

7 वि० सं० १५१५ की नरसेनदेव द्वारा लिखित सिद्ध चक्र कथा की प्रशस्ति वि० सं० १५१८ ज्येष्ठ सुदी ३ की प्रद्युम्न चरित की प्रशस्ति आदि जो सब आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहित है दृष्टव्य है।

प्रशस्तियां देखने को मिली हैं। इससे प्रकट होता है कि सोलंकियों को इनसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ रहा था।

राव सुरत्राण —सेडदेव के बाद कौन शासक हुआ था इसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। दुर्भाग्य से इनके शिलालेखों में जो वंशावलियां दी हुई हैं वह भी राव सुरतेण से प्रारम्भ होती है। राव सुरतेण की अब तक प्राप्त प्रशस्तियों में सबसे प्राचीनतम वि० सं० १५५१ की है जो मेवाड़ के पुर ग्राम की है। सेडदेव और सुरतेण के मध्य कम से कम दो राजा अवश्य हो गये होंगे। नैणसी ने सुरताण के पहले दुजनसाल और हरराज के नाम अवश्य दिये हैं। वि० सं० १५५१ की प्रशस्ति लब्धीसार ग्रन्थ की है जो दिगम्बर जैन मंदिर (बधिचन्द जी) जयपुर के (ग्रन्थ संख्या ११६) संग्रहालय में है। यह प्रशस्ति अबतक अप्रकाशित थी जिसे मैंने अनेकान्त में प्रकाशित कराई है। इसमें महत्वपूर्ण सूचना यह मिलती है कि राव सुरताण को मेवाड़ के महाराणा ने पहले पुर ग्राम दिया था इसके पश्चात् बदनौर। प्रश्न यह है कि सुरताण मेवाड़ में कब आया था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वी राजस्थान के अधिकांश भाग पर[8] उस समय मालवे के सुल्तान का अधिकार हो चुका था। हाड़ौती से लेकर नरेना तक का भाग इसके अधिकार में था। टोडा से वि० सं० १५३७ की आदिपुराण[9] की एक प्रशस्ति मिली है जिसमें वहां गयासुद्दीन का राज्य

---

8 वि० सं० १५४१ में लिखी गुणगुणरत्नाकर काव्य में हाड़ोती प्रदेश मालवदेश के सुल्तान के अन्तर्गत वर्णित किया है —
हाडावतीमालवदेशनायक प्रजाप्रियश्रुमदमुख्यमणिए ॥८॥
वि० सं० १५४५ की सुकुमाल चरित की प्रशस्ति से पता चलता है कि बारां पर गयासुद्दीन का राज्य था। नरेना टोंक अथवा मल्लारणा आदि से प्राप्त कई ग्रन्थ प्रशस्तियों में गयासुद्दीन का राज्य होना वर्णित है।

9 संवत् १५३७ फाल्गुन सुदि ९ रविवारे उत्तरानक्षत्रे सुरत्राण गयासुद्दीन राज्ये प्रवर्तमाने टोडागढ़ दुर्गे।"
आदिपुराण की प्रशस्ति (राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग २ पृ. २२८

स्पष्टतः वर्णित किया है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि सुरसेण या सुरत्राण को इसके पूर्व ही मेवाड़ भगा जाना पड़ा होगा। कविसार[2] की वि० सं० १५५१ की उक्त प्रशस्ति में स्पष्टतः उल्लेखित है कि मेदपाट देश के पुर ग्राम में ब्रह्म चालुक्य वंशी राजा सूर्यसेन वहां उस समय शासक था। मेवाड़ की ख्यातों और नैणसी के वृत्तान्त के अनुसार इसे बदनोर में जागीर दी गई थी। बदनोर में संभवतः पुर के पश्चात् ही जागीर दी गई होगी। बूंदी का राव माण्ड भी इसी समय मेवाड़ में शरण ले रहा था। उसे भीलवाड़ा ग्राम दिया[1] गया था। वि० सं० १५५६ ई० की 'षट कर्मोपदेश माला' की एक प्रशस्ति में जो भील वाड़ा ग्राम की है इसका उल्लेख है। संभवतः जब माण को भीलवाड़ा दिया गया हो उस समय पुर सुरत्राण से लेकर उसे बदनोर दे दिया हो। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि बदनोर के आस पास मेरों की बड़ी बस्ती थी। वे लोग निरन्तर विद्रोह किया करते थे। कुम्भा ने इनके प्रसिद्ध वीर मुनीर को मारा था। किन्तु संघर्ष चल रहा था। अतएव इनको दबाने के लिये उसे बदनोर में नियुक्त किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है।

---

10 संवत् १५५१ वर्षे आषाढ़ सुदि १४ मंगलवासरे ज्येष्ठा नक्षत्रे श्री मेदपाटदेशे श्रीपुरनगरे श्रीब्रह्मचालुक्यवंशे श्रीराजाधिराज सूर्यसेन प्रवर्तमाने (श्री वर्धीचन्द्र जी के दिगम्बर जैन मंदिर के ग्रन्थ सं० ११६)

11 *षटकर्मोपदेश माला की प्रशस्ति*

सं० १५५६ वर्षे माघ सुदि ११ शनिवासरे शतभिषा नक्षत्रे राजाधिराजश्रीमाण्ड विजयराज्ये श्रीभीलोड़ा ग्रामे श्रीचन्द्रप्रभ चैत्यालये"
(राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ३ पृ० ७८)

12 ज्यालावली कलयिता ज्वलनोपवासी
मल्लीर वीरमुखवीरहरेयमीरं।
यो वर्द्धमानगिरिमाशु विजित्य तस्मिन्
मेदानमंडलविभीनशासीत् ॥ २५४ ॥
मल्लीर को मारने का उल्लेख संगीतराज की प्रशस्ति और अमर काव्य में भी है। महाराणा कुम्भा पृ० ३७-३८

तारा के विवाह की कथा —कहा जाता है कि राव सुरताण की पुत्री तारादेवी बड़ी रूपवती थी। इसके रूप की प्रशंसा सुनकर महाराणा रायमल के कुंवर जयमल ने उसे देखना चाहा। सोलंकियों को यह बहुत बुरा लगा। जयमल ने उन पर आक्रमण किया और इसी में उसकी मृत्यु हो गई। राव ने सारा वृत्तान्त महाराणा को लिखकर भेजा महाराणा ने उसे क्षमा कर दिया। मध्यकाल के लिये यह घटना एक उल्लेखनीय है क्योंकि उस समय वैर लेना बड़ा प्रसिद्ध था। तारा का विवाह महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के साथ हुआ। इसमें टोडा के उद्धार की भी शर्त रक्खी गई। इसने अचानक मोहर्रम के दिन टोडा पर हमला[13] करके मुसलमानों को वहाँ से निकाल भगाया। यह घटना वि० सं० १५६० के आसपास होना चाहिये। टोडा से सूरसेन की सबसे पहली अब तक ज्ञात प्रशस्तियों में वि० सं० १५८० की मिली है।

चाटसू के लिये संघर्ष —सोलंकियों के कछावा पड़ौसी थे। चाटसू क्षेत्र के लिये दोनों ही इच्छुक थे। राव सूरसेन ने महाराणा सांगा की सहायता से इस क्षेत्र को जीत लिया और वहाँ अपने पौत्र रामचंद्र को नियुक्त किया। यह राव के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज का बेटा था। चौसा के मंदिर के वि० सं० १५६१ अप्रकाशित लेख[14] और आम्बेर के एक

---

13 ओझा— उदयपुर राज्य का इति० भाग १ पृ० ३३३–३४ शारदा— महाराणा सांगा पृ० १७–२०

14 श्रीमच्चालुक्यवंशोद्भव सोलंकीगोत्रविस्फुटम
यो जातो प्रजापालकसूर्यसेन प्रतापवान् ॥१२॥
तस्य राजाधिराजस्य द्वे [स्त्रियौ] च विचक्षणे।
वर्तते च तयामध्ये पूर्वा सीताख्यया स्मृता ॥१३॥
द्वितीया च जिताख्यातानाम्नी क्षमागारे च।
तत्पुत्रौ च वरौ जातौ कुलयुग्म विचारकौ ॥१४॥
प्रथमे पृथ्वीराजो द्वितीयपुत्रस्तस्यात्मक।
सोमस्ते एतु राजन् पुत्र पौत्रादि संयुत ॥१५॥
चौसा के मंदिर का लेख वि० सं० १५६१ (अप्रकाशित)

अनेकान्त वर्ष १६ पृ० २१२ शोध पत्रिका वर्ष १७ अंक ४ में प्रकाशित मेरा लेख 'कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास'

मूर्ति के वि० सं० १५१३ के लेख के अनुसार सूरसेन के दो रानियां थीं जिनके नाम हैं सौभाग्यदेवी और सीतादेवी । इसके २ पुत्र थे जिनके नाम हैं पृथ्वीराज और पूरणमल । पूरणमल को आंवा ग्राम जागीर में दिया हुआ था । वि० स० १५१४ की वरांग चरित की एक प्रशस्ति में आंवा नगर में इसका शासक के रूप में उल्लेख है ।[15]

रामचन्द्र[16] नीचरटस् क्षेत्र से कई प्रशस्तियां लिखी हैं । करकण्ड चरित की वि० सं० १५८१ की चटमवती की प्रशस्ति अब तक प्राप्त प्रशस्तियों में सबसे पहली है । इसकी सबसे उल्लेखनीय प्रशस्तियां वि० सं० १५८३ आषाढ सुदि ३ बुधवार[17] और वि० सं० १५८४ चैत्र सुदी १४ की[18] हैं जिनमें इसके नाम के साथ साथ महाराणा सांग का भी उल्लेख है । वि० सं० १५८४ वाली प्रशस्ति महाराणा सांगा की अन्तिम प्रशस्तियों में से है ।

राव सूरसेन का ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज या तो अपने पिता के जीवन काल में ही मर गया था अथवा उसका शासन काल बहुत ही अल्प कालीन

---

15 वरांग चरित की प्रशस्ति
'संवत् १५१४ वर्षे शाके १४५१ कार्तिक मासे शुक्लपक्षे दशमी दिवसे धर्मेश्वरवासरे धनेष्टानक्षत्रे अंबयोगे आंवा नाम महानगरे श्री सूर्यसेण राज्यप्रवर्तमाने कुँवर श्री पूर्णमल प्रतापे ......
(राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ४ पृ० ११४)

16 "करकण्डु चरित की प्रशस्ति
'सम्वत् १५८१ वर्षे चैत्र सुदि ६ गुरुवारे चटयाली नाम नगरे राव श्री रामचन्द्रराज्यप्रवतमाने........" (प्रशस्ति संग्रह पृ० ६६)

17 सम्वत् १५८३ वर्षे आषाढ सुदि ३ बुधवासरे पुष्य नक्षत्रे राणा श्री संग्राम राज्ये चम्पावती नगरे राव श्री रामचन्द्र प्रतापे.......
चन्द्रप्रभ चरित की प्रशस्ति (उपरोक्त प० ६६)

18 सम्वत् १५८४ वर्षे चैत्र सुदि १४ शनिवासरे पूर्वा नक्षत्रे श्री चम्पावती कोटे राणा श्री श्री श्री संग्राम राज्ये राव श्री रामचन्द्र राज्ये.....
वृद्धमान कथा की प्रशस्ति (राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ३ पृ० ७७)

था। वि० सं० १५९७ तक[19] की प्रशस्तियां राव सूरसेन की मिली हैं। इनमें सुदर्शन चरित की प्रशस्ति उल्लेखित है। इसके पश्चात् वि० सं० १६०१ की रामचन्द्र की टोडा से मिली है। इनमें जम्बूस्वामी चरित की एक प्रशस्ति उल्लेखित है।[20]

कछावों से चाटसू के लिये संघर्ष बराबर चल रहा था। कछावा राजा पृथ्वीराज वि० सं० १५८१ में आमेर में शासक था इसके समय की लिखी ज्ञानार्णव की एक प्रशस्ति[21] देखने को मिली है। इसी अवसर पर वीरमदेव मेड़तिया ने इस क्षेत्र पर अचानक आक्रमण करके इसे जीत लिया। वि० सं० १५९४ की उसके शासन काल में लिखी पटपाहुड़[22] की एक ग्रन्थ प्रशस्ति भी उल्लेखित है जो चाटसू में लिखी गई थी। राव मालदेव ने उसे शीघ्र ही हटा दिया था और इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। उसके शासनकाल में वि० सं० १५९५ की सांगोला (टौंक के पास) ग्राम में लिखी वरांग चरित[23] की एक प्रशस्ति

---

19 सुदर्शन चरित की प्रशस्ति

सम्वत् १५९७ वर्षे माघमास कृष्णपक्ष द्वितीयां तिथौ बुधवासरे पुष्य नक्षत्र तोडागढ़ महादुर्गात् राजाधिराज राव श्री सूर्यसेन राज विजयि राज्ये........ (प्रशस्ति संग्रह पृ० १८६)

कछावों से चाटसू के लिये संघर्ष बराबर चल रहा था। कछावा

20 जम्बूस्वामी चरित की प्रशस्ति

'संवत् १६ १ वर्षे आषाढ सुदि १३ सोमवासरे टोडागढ़ वास्तव्य राजाधिराज रामचन्द्र विजय राज्ये...... "

21 ज्ञानार्णव की प्रशस्ति

'संवत् १५८१ वर्षे सरस्वती गच्छे– आम्बर नगरस्थानात् कूरमवंश महाराजाधिराज पृथ्वीराज विजय राज्ये सौलाम्बयौ.... ....'

22 पट पाहुड़ ग्रन्थ की प्रशस्ति

'संवत् १५९४ वर्षे माह सुदि १ बुधवारे—चम्पावती नगरे राठौड़ वंशे राय श्री वीरमदे राज्ये ...... (प्रशस्ति संग्रह पृ० १७५)

23 वरांग चरित की प्रशस्ति संवत् १५९५ वर्षे माघमासे शुक्ल पक्षे राव श्री मालदेवराज्यप्रवर्तमाने रावत श्रीमंडलीप्रसादे सांगोला पत्तने.... " (उक्त पृ० ५५)

उल्लेखित है। पाटन के शास्त्रभण्डार में वीरमदेव की 'षटकर्मप्रभाव सूरि" की प्रशस्ति वि० सं० १५२२ की है जिसमें स्पष्टतः मेड़ता पर वीरदेव का राज्य उल्लेखित किया है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि वि० सं० १५९५ में मालदेव ने मेड़ता आदि क्षेत्र वीरमदेव से ले लिये होंगे। सोलंकियों ने मालदेव से यह क्षेत्र कब मुक्त कराया इसका कुछ उल्लेख भी है किन्तु वि० सं० १६०० तक मालदेव का अधिकार ज्ञात है। उसने अपनी ओर से राव सेवसी को नियुक्त कर रखा था। वि० सं० १६०२ की ग्रन्थ प्रशस्तियों[24] में यहाँ सहआलम का नाम दिया है। यह या तो इस्लाम शाह का उपनाम है अथवा मेवात का शासक रहा हो। इसके समय की कुछ अन्य प्रशस्तियाँ अलवर[25] नगर की देखने को मिली है जिनमें वि० सं १६०० की लघु संग्रहिणी की है जो गुजरात में छाणी के शास्त्र भण्डार में संग्रहित है। इसी प्रकार भैवेश्वर काव्य की एक प्रशस्ति वि० सं० १६१० की भी राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची में उल्लेखित की गई है।

राव रामचन्द्र —राव रामचन्द्र वि० सं० १६०१ के आसपास गद्दी पर बैठा। इसने मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की सहायता से टोडा और इसके आसपास के क्षेत्रको स्वाधीन किया हो। वि० सं० १६०४ के टोडा के बहुचर्चित लेख[26] में मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह

24 षट पाहुड़ की प्रशस्ति
"संवत् १६०२ वर्षे वैसाख सुदि १० तिथौ रविवासरे उत्तरफाल्गुन नक्षत्रे राजाधिराज शाह आलम राज्ये चम्पावती मध्ये,"
(उक्त पृ० १७४)

25 संवत् १६ ० वर्षे भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे रवौ पातिसाह श्री शाह आलमराज्ये अलवर महादुर्गे·······
(प्रशस्ति संग्रह by अमृतलाल शाह पृ ११०)

26 संवत् १६०४ वर्षे शाके १४६९ मिगसर वदि २ मिते–
बड़ गीयती। श्री० पाल्हण तस्य पुत्र नराहण···राजाधिराज राव श्री सूर्यसेणि। तस्यपुत्र राजश्री पृथ्वीराज॥ तस्य पुत्रराज श्री राव रामचन्द्र राज्ये वर्तमाने। तस्य कुंवर चं० परसराम पातिसाहि शेर शाह सूरी तस्यपुत्र पातिसाहि असलेम साहि॥ श्री वारी वर्तमान॥

दिल्ली के बादशाह सलेमशाह और टोडा के राजाओं का वंशक्रम सूरसेन से दिया हुआ है। इस शिलालेख पर विद्वानों के कई लेख प्रकाशित हो गये हैं किन्तु खेद है कि इन्होंने सूरसेन और उसके वंश क्रम पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। वि० सं० १६१० की भाद्रपद शुक्ला ६ की यशोधर[27] चरित की प्रशस्ति से प्रकट होता है कि यह इस्लाम शाह सूर के आधीन था। वि० सं १६१२ की 'णाय कुमार चरिउ'[28] और "जसहर चरिउ[29] की प्रशस्तियों में दिल्ली के सुल्तान मोहम्मद आदिलशाह का नाम अवश्य नहीं है किन्तु यह स्वतन्त्र शासक रहा हो ऐसा अनुमान करना कठिन है। चाटसू आदि क्षेत्र भारमल कछावा के अधिकार में चला गया था।[30]

सार्व भूमि को पसम पोड़ा म स ११ की पसमु राय श्री संग्रामदेव। तस्यपुत्र उदयसिंह देवराणी कुम्भलमेर राज्ये प्रवतमाने······ –
(मरुभारती वर्ष ५ अंक १ पृ० २०)

27 यशोधर चरित की प्रशस्ति
'संवत् १६१ वर्षे भाद्रपद मास शुक्लपक्ष षष्ठ्यां तिथौ सोमवारे स्वाति नक्षत्रे तक्षकमहादुर्गे श्रीआदिनाथ चैत्यालयेपातिसाह श्रीसलेमसाहराज्य प्रवर्तमाने राव श्री रामचन्द्र प्रतापे······ –
(प्रशस्ति संग्रह पृ० १६१)

28 णायकुमार चरिउ की प्रशस्ति
'स्वस्ति सम्वत १६१२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ शनिवारे श्री आदिनाथ चैत्यालय तक्षकमहादुर्गे महाराजाधिराजरावश्रीरामचन्द्र राज्ये······"
(उक्त पृ० १११)

29 जसहर चरिउ की प्रशस्ति
"सम्वत् १६१२ वर्षे आसोज मासे कृष्णपक्षे द्वादशी दिने शुक्रवारे अश्लेषा नक्षत्रे तक्षकगढ़ महादुर्गे महाराजाधिराज राव श्रीरामचन्द्र राज्य प्रवर्तमाने······' (उक्त पृ० ११२)

30 उपासकाध्ययन की प्रशस्ति
'सम्वत् १६२१ वर्षे पोष सुदि २ शुक्रवासरे श्री पार्श्वनाथ चैत्या लये गढ़ चम्पावती मध्ये महाराजाधिराज श्री भारमल कछावा राज्ये······ (उक्त पृ० ६४)

राव कल्याण और सुर्जन —राव रामचन्द्र के पुत्र परशुराम का उल्लेख वि० सं० १५०४ के लेख में है। किन्तु इसकी कोई प्रशस्ति अथवा लेख नहीं मिला है। राव कल्याण की अब तक दो प्रशस्तियाँ देखने को मिली हैं। वे हैं वि० सं० १५१४ चतुर्थी ५ की यशोधर चरित्रकी और वि० सं० १५१५ की ज्ञानार्णव की। इसी प्रकार राव सुजन सोलंकी की वि० स० १५११ को श्रीपाल चरित्र की प्रशस्ति[31] और वि० सं० १६१६ की आषाढ सुदि १३ श्रीधंधर चरित्र की प्रशस्ति[32] देखने को मिली है। ये दोनों प्रशस्तियां सांथोण ग्राम की हैं। इस समय ये अकबर के आधीन हो चुके थे। इसके पश्चात् इन सोलंकियों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। अकबर ने रणथंभोर और टोडा का भाग[33] जगन्नाथ कछावा को दे दिया था। जगन्नाथ कछावा के वि० सं० १६५४ और १६६१ के दो लेख मिले हैं। इसकी रणथंभोर की एक प्रशस्ति वि० सं० १६४४ की पटकर्मोपदेश माला की देखने को मिली है अतएव अनुमान है कि इसी तिथि के आस पास इसने टोडा से सोलंकियों का निकाल दिया था। इसके पश्चात् यहां फिर सोलंकियों का अधिकार नहीं हुआ।

समसामयिक एक हस्तलिखित ग्रन्थ में इस नगर का प्रसंगवश वर्णन है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है —[34]

> नानावृक्ष कुसुमैर्माति सर्वत् सत्व सुखंकर ।
> मनोगत महाभोग प्रासादाद् समन्वित ॥ १५ ॥
> तोडाख्यो दुर्गमह्या दुर्गोदुर्गे मुख्य प्रिया पर ।
> तच्छाया नगरं योभि विस्मयति विभायत् ॥ १५ ॥

---

31 श्रीपाल चरित्र की प्रशस्ति

संवत् १६११ वर्षे कार्तिक वदि ६ शुक्रवासरे– मालपवाल मध्ये टोंक समीपे सांखिण नगरे पातशाह श्री अकबर विजय राज्ये सोलंकी महाराय श्री सुरजन"..." (उक्त पृ० १८०)

32 धीर्धंधर चरित्र की प्रशस्ति 'सम्वत् १६१६ वर्षे आषाढ सुदि १३ सोमवारे सांथोण ग्राम राव श्री सुरजन की प्रवर्तमाने"......"
(उक्त पृ० १५)

33 मरुभारती वर्ष ५ अंक १ पृ० २०–२१

34. राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ४ पृ० ६१०

स्वच्छ पानीय सपूर्णे वापिकूपादिभिर्महत् ।
श्रीमद्भनहुन्नानामहट्ट व्यापारमूर्तिम् ॥ १७ ॥
अर्कतुर्पैरयाम्ये रेवै भगवानन्द कारक ।
विविध मठ संदोहे कणिमूकम सुमन्दिरो ॥ १८ ॥

इस उपरोक्त विवरण से इन राजाओं का वंशक्रम अब इस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है –

शेखरदेव (१४९२ वि०)
⋮
राव सूरसेण (१५०१ से १५९७ वि०)

- पृथ्वीराज
  - रामचन्द्र (वि १४७१ से ८५ तक चाटसू जागीर म) (१९०१ से १९१२)
    - परसराम
    - कल्याण (१९१४ और १५)
      - सुर्जन (१९११ से १९११)
- पूरणमल (१५६४ आमा जागीर में
- तारादेवी
  - (पृथ्वीराज शिशोदिया को ब्याही जो कुम्भलगढ़ में सती हुई)

[विश्वम्भरा वर्ष ४ अंक १ में प्रकाशित]

महारावल गोपीनाथ से सम्बन्धित कुछ ग्रन्थ-प्रशस्तिया

डूंगरपुर का महारावल गोपीनाथ या गईपा बड़ा प्रसिद्ध शासक था। यह महारावल पाता के पश्चात् डूंगरपुर राज्य का अधिकारी हुआ था। इसके शासनकाल की मुख्य घटनाए महाराणा कुम्भा और गुजरात के सुल्तान अहमदशाह के साथ युद्ध करना है। यह बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। महाराणा मोकल के अन्तिम दिनों में मेवाड़ की फूट का लाभ उठाकर उसने कोटड़ा जावर आदि भाग छीन लिया। जावर से वि० सं० १४७८ का महाराणा मोकल का शिलालेख[1] मिला था। कन्नम के राठोड़ों के साथ इसके क्या सम्बन्ध थे यह स्पष्ट नहीं हो सका है।

फारसी तवारीखों के अनुसार गुजरात का सुल्तान अहमदशाह रज्जब हि० स० ८३६ (फरवरी/मार्च १४३२ ई०) में डूंगरपुर मेवाड़ और नागौर पर आक्रमण करने को रवाना[2] हुआ था। तारीख इ-मस्काई में लिखा है कि सुल्तान[3] डूंगरपुर होता हुआ मेवाड़ में देलवाड़ा और नीलवाड़ा की तरफ गया। उसके सेनापति मलिक मुमीर ने डूंगरपुर और मेवाड़ में बड़ी लूट मचाई और एकलिंगजी के प्रसिद्ध देव भवन को खंडित किया। तबकात ए अकबरी में निजामुद्दीन को रावल

---

1 वीरविनोद भाग १ के शेष संग्रह में प्रकाशित।

2 तारीख-इ फरिश्ता का अनुवाद भाग ४ पृ, ११
तबकात इ-अकबरी भाग ३, पृ० २२०

3 मिराते सिकन्दरी का अनुवाद पृ० १२० १२१

4 तबकात-इ अकबरी का अनुवाद भाग १ पृ० २०२-२१

द्वारा भारी रकम देकर आक्रमण से मुक्ति पाना[5] लिखा है । आंतरी शान्तिनाथ के मन्दिर की वि० सं० १५२५ की प्रशस्ति में रावल गोपीनाथ के गुजरात[6] के सुल्तान की अपार सेना को नष्ट कर सम्पत्ति लूटने का उल्लेख है, जो अतिशयोक्ति प्रतीत होती है ।

कुम्भा के साथ उसका युद्ध वि० सं० १४९६ के पश्चात् हुआ प्रतीत होता है क्योंकि राणकपुर के प्रसिद्ध लेख में उक्त विजय का उल्लेख नहीं है । इसके अतिरिक्त कुम्भा के भूभाग से वि० सं० १४९४ का गुरवाड का शिलालेख हाल ही में विद्वान् लेखक श्री रत्नचन्द्रजी अग्रवाल ने[6] प्रकाशित कराया है । उसमें भी महाराणा कुम्भा का उल्लेख नहीं है, जिससे भी स्पष्ट है कि उस काल तक उसका वहाँ पर राज्य नहीं हो सका था । कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में रावल गोपीनाथ को जीतने के लिये कुम्भा ने अश्वसेना की सहायता लेना उल्लेखित है । उसके आने की सूचना मिलते ही रावल गोपीनाथ भाग खड़ा हुआ[7] । इस युद्ध के फलस्वरूप कोटड़ा और जावर स्थायी रूप से मेवाड़ में मिला लिये गये ।

इस राजा की तिथि अब तक वि० सं० १४८१ मानी जाती है अबबदास खीची की वचनिका में भी इस उल्लेख है । किन्तु प्रस्तुत प्रशस्तियों में एक वि० सं० १४८० की भी विद्यमान है अतएव इसके राज्य काल का सम्वत् १४८० के आसपास रहना चाहिये । इससे सम्बन्धित कुछ प्रशस्तियाँ इस प्रकार हैं—[4]

(१) पंच प्रस्थान विषम पद व्याख्या

यह ताडपत्रीय ग्रन्थ है एवं श्री अमृतलालभाई द्वारा सम्पादित

---

5 ओझा डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ ६५ ६६

6 वरदा वर्ष ६ अंक ४

7 तस्मात्सैन्यतमीर तरंगिणी नामभिःकृत्य किमुसमुत्तरणं तुरंगैः,
श्रीकुम्भकर्णनृपतिः प्रविवीर्णो क्षिप्रराजोऽयम् गिरिपुरं यदनी
जिष्णुः ॥ २६६ ॥
यदीय गजवृगजतुर्यघोर्यासिहृस्वनाकर्णनमष्टधैर्यो ।
विहायदुर्गं सहसा पलायाँ चकार गोपाल म गाल बाल ॥२६७॥
(कुम्भलगढ़ प्रशस्ति)

प्रशस्ति संग्रह नामक ग्रन्थ में यह पृ० २१५ पर प्रकाशित है —

'स्वस्ति सम्वत् १४८० वर्षे आद्य इ श्रीड़ गरपुरनगरे राउल श्रीगइ पालदेवराज्ये श्रीपार्श्वनाथचैत्यालये लिखितं पद्माकेन.... '

(२) द्वयाश्रय वृत्ति (प्रथम खण्ड, सर्ग १ ११)

यह ग्रन्थ सिंघवी पाड़ा पाटन के भण्डार में सुरक्षित है और "डिस्क्रिप्टिव केटलाग ऑफ मेनुस्क्रिप्ट इन दी जैन भण्डार एट पाटन' ग्रन्थ के पृ० २१६ पर प्रकाशित है —

'सम्वत १४८५ वर्षे श्री डू गरपद्र राज्ये राउल गइपाल विजय राज्ये श्रावण वदि १५ गुरुदिने द्वयाश्रयवृत्ति लिखिता लिखाकेन शुभं भवतु । (सूची संख्या १५८)

(३) द्वयाश्रयवृत्ति (र्स सर्ग १२ १०) अभयतिलक प्राकृत द्वयाश्रयवृत्ति (सर्ग ८) कु टिपण यह ग्रन्थ भी उपयु क्त भण्डार में है और उक्त ग्रन्थ के पृ० २११ पर प्रकाशित है —

'द्वितीय खण्ड ग्रन्थाग्र' ८८५८ । सकल ग्रन्थ १७४७४ सम्वत १४८६ वर्षे श्रीडू गरपुरे लिखितं लींबाकेन'

(४) ' उत्तराध्ययन सूत्र अवचूरि''

जैसलमेर भण्डार की ताड़पत्रीयसूची में पोथी सं० ११ में इसका वर्णन किया है । इसकी प्रशस्ति इस प्रकार है —

सम्वत् १४८६ वर्षे फाल्गुन वदि १० रवौ श्री डू गरपुर नगरे राउल गइपालदेव राज्ये लिखिता लीम्बाकेन ।

(५) कथा कोश प्रकरणम्

खंभात के भण्डार में सुरक्षित है । प्रशस्ति संग्रह के पृष्ठ संख्या ८८ पर प्रकाशित है —

श्री जिनेश्वर सूरिविरचित कथाकोष' प्रकरणं समाप्त मिति । शुभं भवतु । श्री श्रमण संघस्य । सम्वत् १४८७ वर्षे आषाढ मासे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ रविदिने श्री डूंगरपुर नगरे राउल श्री गइपालदेव विजय राज्ये कथाकोष प्रकरण लिखितं लिम्बाकेन मंगलमस्तु । लेखक पाठकयो

(६) दशवैकालिक नियु क्ति

लिंबडी भाडा पाटन में संग्रहित है एवं प्रशस्ति संग्रह के ग्रन्थ में पृष्ठ ११८ पर प्रकाशित है —

संवत् १४८६ वर्षे ज्येष्ठ मासे कृष्ण पक्षे द्वितियां तिथौ गुरुदिने लिखितं डूंगरपुर नगरे पचाकेन'

(७) श्री उत्तराध्ययन नियुं क्ति

उत्तराध्ययन वृत्ति श्री शान्तिसूरि

लिंबडी भाडा पाटन के भण्डार में संग्रहित है और उपयुक्त संख्या २ पर प्रकाशित सूची के पृ० सं० २०२ २०३ पर प्रकाशित है—

'स्वति सम्वत् ४८६ वर्षे श्रावण मासे शुक्लपक्ष द्वितीयायां तिथौ रविदिने श्री इमी डूंगर नगरे राउलगइपालदेव राज्ये लिखित श्री पार्श्व जिनालय पचाकेन—"

इसके उत्तराधिकारी रावल सोमदास की तिथि वि० सं० १५०६ के आसपास मानी जाती है किन्तु वि० सं १५०४ की इसकी एक प्रशस्ति बड़ौदा के भण्डार में संग्रहित है। यह प्रशस्ति 'सिद्धहेम बृहद्वृत्ति ग्रन्थ की है, जो इस प्रकार है—

"......सम्वत् १५ ४ वर्षे मार्गसिर सुदि ११ सोमे। श्री गिरिपुरे राउल श्री सोमदास विजयराज्ये। महं० आवा सुत महं० धनाजे निज भ्रातृ स्वपठनार्थमिदं प्राकृत व्याकरणम्—लेखि ॥छ ॥'

(प्रशस्ति संग्रह पृ० ३६)

इन प्रशस्तियों से रावल गोपीनाथ का शासनकाल वि० सं० १४८० से १५०३ के आसपास तक स्थिर होता है। इसके शासनकाल में डूंगरपुर में बड़ी उन्नति हुई थी। विद्या का बड़ा विकास हुआ और कई ग्रन्थ लिखे गये थे। उनके समय के दो मुख्य लेखकों के नाम कीम्बा और पचा उल्लेखनीय हैं।

[राजस्थान भारती वर्ष १०
अं ४ में प्रकाशित]

---

[४] रत्नसिंह जो हमीर चौहान का पुत्र था जिसे महाराणी ने चित्तौड़ में शरण दी थी।

[१] श्री कानूनगो ने यह दलील दी है कि मेवाड़ के भाटों ने इन चारों को मिला करके एक कर दिया है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह आलोचना ठीक नहीं है। रत्नसिंह नाम के अलग २ कोई चार राजा नहीं थे। रावल समरसिंह के बाद रत्नसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ था। जायसी का पद्मावत न तो ऐतिहासिक ग्रन्थ है और न समसामयिक कृति। उसमें सुनी-सुनाई कथाओं के आधार पर रत्नसिंह के पिता का नाम गलती से चित्रसेन लिख दिया है। कुंभाड़ जाति के किसी रतना का उल्लेख उस समय नहीं मिलता है। बैमा के पुत्र रतना का जो टांटेरड़ जाति का था अवश्य उल्लेख मिलता है। कानूनगो ने भ्रम से टांटेरड़ को कुंभाड़ पढ़ा है। यह घटनाकाल के कई वर्ष पूर्व ही मर चुका था। यह ठकारल मात्र था और इसका राज्य परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं था। चौथे रत्नसिंह का वर्णन वंश भास्कर जैसे आधुनिक ग्रन्थ में मिलता है। हमीर चौहान के वंशज गुजरात में चले गये थे जहां से उनके कई लेख मिले हैं। उनमें हमीर के पुत्र का नाम रत्नसिंह दिया हुआ नहीं है। हमीर महाकाव्य आदि ग्रन्थों में भी हमीर के किसी पुत्र के चित्तौड़ आश्रय का उल्लेख नहीं मिलता है। अधिक पूर्वमध्यकाल की घटनाएं जो वंश-भास्कर में वर्णित की गई हैं विश्वसनीय नहीं हैं। एक विचित्र बात यह है कि कानूनगो एक तरफ तो यह तर्क देते हैं कि पद्मिनी का उल्लेख समसामयिक या २०० वर्ष के पूर्व की किसी कृति में नहीं है, अतएव अप्रमाणिक है जबकि अपने काल्पनिक तर्कों के लिये वंश भास्कर जैसे आधुनिकतम ग्रन्थों का सहारा भी लेते हैं।

[२] श्री कानूनगो रत्नसिंह को चित्तौड़ का शासक नहीं बतलाते हैं। वे लिखते हैं कि मेवाड़ के चित्तौड़ के अतिरिक्त अवश में एक चित्रकूट और है। रत्नसिंह वहीं का शासक था। इसके लिये इन्होंने एक विचित्र तर्क प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि प्रो॰ मजुमदार ने एक हस्तलिखित "रत्नसेन कुमावली" नामक ग्रन्थ ढूंढा है जिसमें

किया है कि चित्तौड़ के राजा रतनसेन ने मुसलमानों से कई युद्ध किये और इसका पुत्र नागसेन प्रयाग का शासक हुआ। नागसेन के बाद नैपाल के शासक हैं। अतएव इनकी धारणा यह है कि यह मेवाड़ का चित्तौड़ न होकर इलाहाबाद के आसपास कहीं स्थित था। जायसी ने भी इसी नगर का वर्णन किया है। कानूनगो का यह कथन केवल काल्पनिक तर्कों पर ही आधारित है। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कानूनगो जैसे एक उच्चकोटि के विद्वान् बिना पद्मावत को पढ़े ही ऐसी टिप्पणी लिख देते हैं। यह सर्व विदित है कि नैपाल का मौजूदा राज वंश मेवाड़ के गुहिलोतों से ही सम्बन्धित है। जायसी ने न केवल पद्मावत में चित्तौड़ का वर्णन किया है बल्कि मेवाड़ के मांडलगढ़ आदि का वर्णन किया है। चित्तौड़ के शासक को हिन्दुओं का सबसे बड़ा शासक[1] बतलाया है। अतएव कानूनगो के तर्क में कोई बल प्रतीत नहीं होता है।

रतनसिंह का दरीबे से वि० सं० १३५९ माघ सुदी ५ बुधवार का लेख[2] मिल चुका है जो अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के लिये प्रयाण करने की तिथि से ४ दिन पूर्व का ही है। अतएव उस समय वही शासक था।

क्या पद्मिनी सिंहलद्वीप की थी ?

पद्मिनी और रतनसिंह के विवाह को लेकर इस कथानक की अत्यधिक आलोचना की जाती है। 'अमरकाव्य' वंशावली के अनुसार रतनसिंह समरसिंह का औरस पुत्र न होकर सीसोदा शाखा का था जिसे उसने गोद लिया था। यह लक्ष्मणसी के साथ यह कई वर्षों तक मेवाड़ के बाहर मालवा में भी रहा था।

पद्मिनी को सिंहलद्वीप की राजकुमारी मानने से इस कथानक में

1 जायसी कृत पद्मावत में चित्तौड़ युद्ध का प्रसंग द्रष्टव्य है। इसमें आक्रमण का मार्ग मांडलगढ़ होकर वर्णित किया है।

2 ओझा: उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० ...

बड़ी भांति पता हो गई है। जायसी ने तो यह भी निर्देश किया है कि *उक्त सारा ग्रंथ धार्मिक प्रतीकों पर आधारित है अतएव कई लोग इसे* केवल कल्पना ही' मानते हैं। 'पद्मावत निस्संदेह काव्य ग्रंथ है। उसमें इतिहास के साथ २ कल्पना का होना स्वाभाविक है। वस्तुतः भारतीय *कथा ग्रंथों में नायक का सिंघल जाकर विवाह कर* लाना एक प्रिय विषय रहा है। अपभ्रंश के "करकण्डु चरिउ' में नायक के सिंहल जाकर विवाह करने और मार्ग में लौटते समय समुद्र में तूफान आने आदि का वर्णन है। *विलासवती चरित्र* भविसयत कहा आदि में भी इसी प्रकार के प्रसंग है। श्री पाल चरित्र' में समुद्रपार के देशों से कई राजकुमारियों का विवाहित करके लाने का उल्लेख[1] मिलता है। सौभाग्य *से महाराणा कुम्भा के शासनकाल में ही लिखी 'रयण सेहरी कहा* में भी इसी प्रकार का प्रसंग[2] है। यह जायसी के कई वर्ष पूर्व की कृति है। उसकी नायिका भी सिंहलद्वीप की राजकुमारी है। इसे प्राप्त करने के *तरीके भी पद्मावत और उसमें मिलते हैं। रयणसेहरी में स्वयं मंत्री* जोगिनी बनकर जाता है, जबकि पद्मावत में स्वयं राजा। दोनों के मिलन का स्थान मंदिर वर्णित है। कथा बहुत मिलती[3] है। केवल *अन्तिम भाग में अन्तर है। अतएव पता चलता है* कि इस प्रकार की कथायें भारतीय कथा-साहित्य में बहुत ही प्रचलित थी। इस दृष्टि से पद्मिनी को सिंहल की राजकुमारी मानना गलत है।

कई विद्वान् सिंहल से संगति बिठाने के लिये सिंगोली ग्राम से इसका ध्वनि साम्य बिठाते हैं। कुछ अर्वाचीन[4] बयावलियों में समन्द्रद्वीप पाटन' लिखा हुआ है। इन कथाओं में भी इसे ग्राम चौहान वंश

---

1 मेरा लेख पद्मणी री ऐतिहासिकता' मरुवाणी मार्च १९६७ पृ० २१ से २४

2 महाराणा कुम्भा पृ० २११ और रयण सेहरी कहा गाथा १४९ एवं १५०।

3 मरुवाणी मार्च १९६७ पृ० २१ से २४

4 भारतीय साहित्य वर्ष २ अंक २ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख।

की राजकन्या मानी है जो मालवा या पश्चिमी राजस्थान के किसी भू भाग की रही होगी।

निस्संदेह राजा रत्नसिंह के सिंहल जाने और वहां से पद्मिनी को विवाह लाने की कथा पूर्ण रूप से कल्पना है। अबुल फजल ने इसका वर्णन नहीं किया है। स्मरण रहे कि इस अंश को हम सम्पूर्ण कथानक में से निकाल देने से पद्मिनी की ऐतिहासिकता पर कोई अन्तर नहीं आता है। रत्नसिंह का शासनकाल अल्पकालीन होने के कारण यह वर्णन सर्वथा गलत है।

क्या पद्मिनी कथानक केवल जायसी की कल्पना है ?

श्री कानूनगो की मान्यता है कि मेवाड़ के इतिहास में पद्मिनी की कथा जायसी से ली है। उसके पूर्व इसका कोई रूप ही नहीं मिलता। यह कथन पूर्ण रूप से गलत है। राजस्थान के जैन भंडारों में इस संबन्ध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। 'गोरा बादल चौपाई'[1] सम्बन्धी कई ग्रन्थ लिखे हुये हैं। हेमरतन की चौपाई इनमें सबसे प्राचीन है। इस चौपाई

1 श्री उदयसिंह भटनागर द्वारा सम्पादित 'गोरा बादल पदमिणी चउपई' की भूमिका में पृ० १ से ५ तक दिये गये वर्णन में पद्मिनी कथानक को ५ प्रकार के वर्गों में रखा है —

(1) अज्ञात वर्ग इसमें जैन कवि, हेतमदान आदि हैं।
(2) जायसी वर्ग
(3) हेमरतन वर्ग
(4) जटमल नाहर वर्ग
(5) लब्धोदय वर्ग

श्री नाहटाजी द्वारा सम्पादित 'पदमिणी चरित चौपाई' भी द्रष्टव्य है।

• हेतमदान कविमल्ल भणि अमर कित्ति ते बरत गिणि।
रति न को रवि चक हनि अलावदीन सुलितान दिण ॥१५५॥

को जायसी के पद्मावत के कुछ समय बाद ही पूर्ण किया गया था। इसका आधार जायसी से भिन्न है। इसमें हेमपाल और कविमल्ल की गोरा बादल सम्बन्धी कृतियों का वर्णन है जो निश्चित रूप से जायसी के आसपास ही या इससे पूर्व की रही है। लगभग इसी समय हेमरतन के आसपास ही पद्मिनी कथानक सम्बन्धी वृतान्त दो कृतियों में मिलते हैं। आइने अकबरी और तारीख–ए–फरिश्ता'। इन दोनों के कथानक का आधार भी भिन्न है। अतएव पता चलता है कि जायसी के आसपास ही कथानक के कई रूप मिलते थे। इस सम्बन्ध में एक और ठोस प्रमाण उपलब्ध है। पद्मावत के पूर्व ही छिताई चरित लिखा जा चुका था। यह ग्रन्थ वि० सं० १५८३ संवत शासक सलहदी के राज्यकाल मे पूरा हुआ था। इसमें प्रसंगवश अल्लाउद्दीन और राघव चेतन की बातें दी गई है। अल्लाउद्दीन राघवचेतन से कहता है कि 'मैंने चित्तौड़ में पद्मिनी के बारे में सुना। उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। रतनसेन को बन्दी बना लिया किन्तु गोरा बादल उसे छुड़ा ले गये। इस प्रकार यह प्रसंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। डा० दशरथ शर्मा की मान्यता है कि यह प्रमाण इतना ठोस है कि इससे भी कानूनगो के सारे तर्क की पद्मिनी केवल जायसी की ही कल्पना है गलत[1] साबित हो जाते हैं। जायसी पर स्वयं 'बेन' नामक किसी कवि का प्रभाव स्पष्ट है।[2] अतएव इस कथा के जायसी के पूर्व ही प्रचलित रहने की बात सिद्ध होती है।

'खजाइन–उल–फतुह' का वर्णन

अल्लाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के समय अमीर खुसरो सुल्तान के साथ निस्सन्देह मौजूद था। किन्तु उसकी कृति अल्लाउद्दीन के राज्यकाल की अधिकारिक हिस्ट्री नहीं है। यह कार्य बरनीउद्दीन को दिया

---

1 जनरल ऑफ ओरियन्टल रिसर्च सोसाइटी vol. १४ अंक १ पृ० ८१ में डॉ० दशरथ शर्मा का लेख पद्मिनी चरित चौपाई की भूमिका पृ० १६

2 पद्मावत में कथा आरम्भ बेन कवि कहा उल्लिखित है।

गया। जिसने 'फतहनामा' में अल्लाउद्दीन के शासन का अत्यन्त विस्तृत इतिहास[3] लिखा। इस ग्रन्थ का बरनी आदि कई लेखकों ने उल्लेख किया है। इसमें मुगलों के प्रति उत्पन्न घृणा पूर्ण वर्णन थे। अतएव प्रतीत होता है कि मुगल शासनकाल में इसे विनष्ट कर दिया। 'खजाइन-उल-फ़ुतूह' में उत्तरी भारत जिनमें गुजरात रणथम्मोर, चित्तौड़ जालोर, सिवाना मालवा आदि की विजय का संक्षेप में वर्णन लिखा है। इसके विपरीत दक्षिण भारत की विजयों का अत्यन्त विस्तार से वर्णन लिखा है। उसके अनुवादकार श्री मोहम्मद हबीब की मान्यता है कि 'फतहनामा में अलाउद्दीन ने उत्तरी भारत की विजयों का ही विस्तार से वर्णन लिखा है इसलिए 'खजाइन-उल-फ़ुतूह में एवं बरनी के ग्रन्थ में इनका अत्यन्त संक्षेप में वर्णन लिखा गया है।[4]

अमीर खुसरो स्वयं पद्य लेखक था। पद्य लेखक के रूप में 'खजाइन-उल-फ़ुतूह' का वर्णन बाण की कादम्बरी के सम न अत्यन्त अलंकार पूर्ण भाषा में है। इसने चित्तौड़ आक्रमण में पद्मिनी का उल्लेख नहीं किया है तो गुजरात आक्रमण के वर्णन में देवलदेवी का वर्णन भी नहीं किया है। रणथम्मोर के आक्रमण का वर्णन भी पूरा नहीं है। इसके अतिरिक्त कई मुगल आक्रमण भी छोड़ दिये हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण थ। अनुवादकर श्री मोहम्मद हबीब की मान्यता है कि खजाइन उल-फ़ुतूह में जो प्रसंग अल्लाउद्दीन के चरित्र के विरुद्ध थे वे इसमें स्वेच्छा से छोड़ दिये हैं। उदाहरणार्थ अल्लाउद्दीन द्वारा अपने चाचा के वध का वर्णन उसमें इसी प्रकार लिखा गया है। अतएव 'खजाइन-उल-फ़ुतूह का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त एक पक्षीय एवं अलंकारपूर्ण भाषा में लिखा गया है।

उसमें सुल्तान के आक्रमण के प्रसंग में लिखा है "११ मुहर्रम को सुल्तान दुग पर पहुंचा। यह मूरख (अमीर खुसरो) जो सुर मान का पक्षी है। उसके साथ था। सुल्तान बार-बार 'हुद हुद' चिल्ला रहा था किन्तु म वापस नहीं लौटा क्योंकि मुझे डर था कि सुल्तान कहीं पूछ न

3 मोहम्मद हबीब कृत "खजाइन-उल-फ़ुतूह' की भूमिका पृ० १२
4 उपरोक्त पृ० १३ १४

बैठे कि हुद-हुद दिखाई क्यों नहीं पड़ता है ? क्या वह अनुपस्थित है ? और यदि वह ठीक कैफियत माने तो मैं क्या बहाना करूंगा ।

दुर्ग पर आक्रमण का उल्लेख करते हुए इसके पूर्व यह पंक्ति दी गई है इस दुर्ग पर आज के युग के सुलेमान (अलाउद्दीन) की सेना को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है जो सेबा के आक्रमण की तरह है। उसमें स्पष्टतः कुरान शरीफ के २१ वें अध्याय में उल्लेखित सुलेमान के सेबा की रानी 'बलकिस' के लिये आक्रमण का संकेत है। इसमें अलाउद्दीन को सुलेमान, बलकिस को पद्मिनी, सेबा को चित्तौड़ और हुद-हुद को अमीर खुसरो से तुलना की गई है। अधिकांश विद्वान इसे ठीक मानते हैं किन्तु श्री कानूनगो शहीद मिर्जा का उल्लेख कर उसे ठीक नहीं मानते हैं किन्तु सारे प्रसंग को देखने से स्पष्ट है कि कानूनगो के आक्षेप गलत हैं जैसा कि ऊपर उल्लेखित है। अमीर खुसरो अलंकारपूर्ण भाषा लिखने में सिद्धहस्त था अतएव उसने स्वाभाविक वर्णन को भी इसी प्रकार रूपकमय भाषा में वर्णित किया है जो उसकी शैली की विशेषता है। इस वर्णन को प्रस्तुत करने का अन्य कोई अर्थ समझ में नहीं आता है।

क्या अबुल फज़्ल पद्मावत का ऋणी है ?

अबुल फज़्ल ने 'आइन-ए-अकबरी' में अजमेर सूबे के वर्णन में चित्तौड़ का प्रसंगवश संक्षिप्त इतिहास लिखा है। श्री कानूनगो की मान्यता है कि पद्मावत से अबुल फज़्ल ने यह वर्णन लिया है किन्तु यह आधारहीन बात है। स्वयं अबुल फज़्ल ने यह लिखा है —[2] Ancient Chronicles record that Sultan Alauddin khulji king of Delhi had heard that Rawal Ratan Singh prince of Mewar possessed a most beautiful wife इसमें 'Ancient Chronicle' शब्द बड़े उल्लेखनीय हैं। इससे साबित हो जाता है कि अबुल फज़्ल के समय कई प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख था। इसको

---

1 मोहम्मद हबीब कृत 'खजाइन-उल-फतूह' की भूमिका पृष्ठ १४

2 आइन-अकबरी vol II पृ २७४

पद्मिनी की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का ठोस प्रमाण मान सकते हैं क्योंकि अबुल फज्ल ने कई ग्रन्थों को देखकर बड़ी सावधानी से अपना ग्रन्थ लिखा है। एनसियेंट का अर्थ कम से कम १०० वर्ष से अधिक की कृतियों को लिया जा सकता है।

राघवचेतन की ऐतिहासिकता

पद्मिनी कथानक का एक प्रमुख पात्र राघवचेतन है। वह पद्मिनी के सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता है। इसे प्राप्त करने के लिये बादशाह को प्रोत्साहित करता है। वह मन्त्रतंत्र आदि कई प्रकार की साधनायें जानता था। उसका दिल्ली दरबार में बड़ा सम्मान था। जिनप्रभसूरि प्रबन्ध में राघवचेतन के साथ उनका वाद विवाद होना वर्णित है। जिनप्रभसूरि भी कई बादशाहों से सम्मानित थे। मोहम्मद तुगलक के शासनकाल में[1] इन्होंने कई ग्रन्थ पूर्ण किये थे। कांगड़ा के संसारचन्द्र की प्रशस्ति में राघवचेतन का वर्णन आता है। शार्ङ्गधर पद्धति में भी राघव चेतस्य भी चरस्यानां वर्णित है। आमेर शास्त्र भंडार में सग्रहित बुद्धिविलास में भी राघवचेतन का वर्णन आता है। 'छिताई चरित' में भी इसका वर्णन है। इस प्रकार राघवचेतन की ऐतिहासिकता में संदेह नहीं किया जा सकता है। यह प्रारम्भ में चित्तौड़ में रहा था। वहां से दिल्ली या बनारस चला गया था। तुगलक सुल्तानों के समय तक यह प्रभावशाली व्यक्ति था।

कुम्भलगढ़ प्रशस्ति का वर्णन

इस कथानक की सबसे बड़ी आलोचना इस बात को लेकर की गई है कि इसका उल्लेख किसी समसामयिक शिलालेख में नहीं है। इस

---

1 खरतरगच्छ पट्टावलि में वर्णित जिनप्रभसूरि प्रबन्ध का उल्लेख—
इत्थ पत्थावे वाराणसीओ समागओ राघवचेयणो चमणो चउदस विज्जा पारगो मंत तंत जाणओ। सो आगंतूण मिलिओ सूरं। साहिणा बहुमाणो कओ। सो निच्चमेव आगच्छइ राय समीवे। एगया पत्थावे सहा उवविट्ठा। तओ राघवचेयणेण चितिअं इइ सुहाणं दोसवंतं काऊण निक्कासामि इत्थ ठाणाओ....॥

सम्बन्ध में मूलभूत बात यह है कि शिलालेखों में रानियों के नाम प्रायः बहुत कम मिलते हैं। मीरां झाली करमेती पद्मा बाय आदि के नाम भी नहीं मिलते हैं। इनकी भी ऐतिहासिकता में इसी प्रकार संदेह करना बुद्धिपूर्ण होगा। लोगों में प्रचलित परम्पराओं पर विचार करना भी आवश्यक है। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में प्रथम बार मेवाड़ का विस्तृत इतिहास लिखा गया था किन्तु उसमें भी पद्मिनी का उल्लेख नहीं किया है। उस सम्बन्ध में स्पष्ट है कि यह प्रशस्ति कुम्भा के उत्तर शासन काल में बनाई गई थी। अतएव इसमें यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है। किन्तु श्लोक सं० १७७ में लक्ष्मणसिंह का वर्णन करते हुए इस सम्बन्ध में कुछ संकेत दिया है। इसमें लिखा है कि रतनसिंह के चले जाने के बाद कुल की मर्यादा की रक्षा करते हुये जिन्हें कायर पुरुष छोड़ना चाहते थे यह काम आया। "कुल स्थिति कापुरुषैर्विमुक्तां न साधुधीरः पुरुषास्त्यजन्ति" का अर्थ स्पष्ट है इसमें गोरा-बादल और पद्मिनी सम्बन्धी कथा का संकेत मिलता है।

पद्मिनी के महल

चित्तौड़ में पद्मिनी के महलों को लेकर भी बड़ी आलोचना की जाती है, कहा जाता है कि ये महल आधुनिक हैं किन्तु मध्यकालीन ग्रन्थों में पद्मिनी के महलों का वर्णन मिलता है। 'अमरकाव्य' में सांगा के प्रसंग में वर्णित है 'सत्स्थाप्य पद्मिनी गेहे कारायां चित्रकूटके' अर्थात् पद्मिनी के महलों में कुछ समय के लिये मालवे के सुल्तान को बन्दी रक्खा। कुछ प्राचीन गीतों में भी वर्णन मिलता है। बीकानेर नरेश रायसिंह का विवाह जब चित्तौड़ में महाराणा उदयसिंह की पुत्री से हुआ तब पद्मिनी के महलों में जाने और प्रत्येक सीढ़ी पर जाते हुये दान देने का वर्णन मिलता है। चित्तौड़ की गजल में भी पद्मिनी के महलों का उल्लेख है। इसी प्रकार और भी वर्णन मिलते हैं। अतएव चित्तौड़ में पद्मिनी के महल अवश्य विद्यमान थे। इनका आधुनिकीकरण तो बाद में हुआ है।

अन्य प्रमाण

राजा को बन्दी बनाने की घटना का उल्लेख वि सं० १३९१ में

मिलती नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध में भी है।[1] नागपुर संग्रहालय में संग्रहित गुहिलवंशियों के एक शिलालेख में विजयसिंह नामक शासक के लिये उल्लिखित है कि उसने चित्तौड़ की लड़ाई में सुल्तान को हराया (जो चित्तौड दुर्गमठ विग्र दिल्ली वसु जित)। यह शिलालेख समसामयिक होने से महत्त्वपूर्ण है। खजाइन उल-फ्तुह' के वर्णन से भी सुल्तान की एक बार हार होना माना जा सकता है। इस सारे वर्णन पर ऐतिहासिकों का ध्यान कम गया है। सुल्तान के ११ मुहर्रम को दुर्ग पर आने का वर्णन आता है, इसके बाद रत्नसिंह को बन्दी बनाने का वर्णन है। अन्त में फिर १० मुहर्रम का चित्तौड़ से आने का वर्णन है। इन तिथियों में व्यवधान है जो विचारणीय है। अतुल फज्ल ने भी दो आक्रमण माने हैं। इस सम्बन्ध में राजपूत सामग्री को देख-कर और शोध की आवश्यकता है। सबसे बड़ी कठिनाई हमारे दृष्टि कोण की है। फारसी तवारीखों में ही इतिहास सीमित नहीं है बल्कि राजस्थान के इतिहास की सामग्री यहां के डिंगल-साहित्य में यहां की परम्पराओं में यहां के विपुल जैन भंडारों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। अतएव इनको अगर उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया तो बड़ा राष्ट्रीय अहित होगा।

[शोध पत्रिका वर्ष ११ अंक ३ में प्रकाशित।]

---

3 श्रीचित्रकूट दुर्गेश बद्ध्वा कात्वा च तद्धनम्।
कष्ठ बद्ध कपिमिवा भ्रामपत्तं च पुरे पुरे ॥१।७॥
—नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध

मालदेव और वीरमदेव मेड़तिया का संघर्ष

७

मेड़तिया राठौड़ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। वीरमदेव दूदावत के समय इनका मालदेव के साथ भीषण संघर्ष हुआ था। इस संघर्ष का प्रारम्भ दौलतखां के भागे हुए हाथी दरियाजोश को मेड़तियों द्वारा पकड़ लेना एवं गांगा और मालदेव के कई बार कहने पर भी उसे नहीं भेजना आदि घटनाओं से माना जा सकता है। वीरम ने इस झगड़े को शांत करने के लिए दो घोड़े राव गांगा के लिए और उक्त दरियाजोश हाथी मालदेव के लिए भेज भी दिया किन्तु हाथी मार्ग में ही मर गया। अतएव वीरम देव और मालदेव के मध्य मनोमालिन्य बना रहा।[1]

वीरमदेव का अजमेर लेना

राव गांगा के बाद मालदेव मारवाड़ का स्वामी हुआ। नागौर के शासक दौलतखां ने वीरम पर आक्रमण किया तब नागौर को खाली देखकर मालदेव ने उसके राज्य पर आक्रमण कर नागौर हस्तगत कर किया। जयमलवंश प्रकाश में दौलतखां के आक्रमण का सविस्तार वर्णन किया गया है। दौलत खां अजमेर की तरफ भाग खड़ा हुआ। यह घटना वि० सं० १५९०-९२ के मध्य हुई।[2]

---

1 रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृ ११२-११३
ओझा—जोधपुर राज्य का—भाग १—पृ २८०
नैणसी की ख्यात जिल्द २ पृ० १५२-५४
जोधपुर राज्य की ख्यात में दौलतखां को ही मोटाना वर्णित है।

2 रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृ० ११७
आसोपा – मारवाड़ का मूल इतिहास पृ २४१
जयमल वंश प्रकाश पृ० ९०
ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० २८६

अजमेर कुछ समय पूर्व से कर्मचन्द पवार के अधिकार में था। महाराणा सांगा का यहां अधिकार था और उक्त कर्मचन्द उसका सामन्त था। सांगा की मृत्यु के बाद भी पवारों का राज्य वहाँ बना रहा था। विक्रमी संवत् १५८९ में गढ़ अमर कमचन्द के उत्तराधिकारी जगमल के अधिकार में था। आमेर शस्त्र भंडार में भविष्यदत्त चरित की एक प्रति संग्रहित है[3] इसकी प्रशस्ति में स्पष्टत: उस तिथि तक वहाँ परमारों का अधिकार होना वर्णित है। वि० सं० १५९० में गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने इसे अधिकृत कर लिया था एवं उसने अपनी ओर से शमशरमुल्क को नियुक्त किया था।[4] नणसी ने वहाँ पंवारों का राज्य होना लिखा है।[5] श्री शारदा ने वि० सं० १ ९०-९२ तक अजमेर पर गुजरात के बादशाह का अधिकार होना लिखा है एवं वीरम का वि सं० १५९२ के बाद ही अजमेर लेना वर्णित किया है। श्री रेऊजी ने विक्रम[6] संवत् १५९१ में वीरम का अधिकार होना लिखा है जो सम्भव मालूम है।

मालदेव का अजमेर लेना

राव मालदेव ने अजमेर जीत लेने से वीरम पर और अधिक चिढ़ गया। उसने शीघ्र ही वीरम को लिखा कि यह भू भाग उसके सुपुर्द करदे। वीरम ने इन्कार कर दिया। इस पर मालदेव ने वीरम पर आक्रमण कर मेड़ता अधिकृत कर लिया। विक्रम संवत् १५९२ वसाख की लिखी पटकर्म प्रघावपूरी की प्रशस्ति के अवलोकन से प्रकट होता

3 संवत् १५८९ वर्षे मार्गसिर मासे कृष्णपक्षे बीज बृहस्पति वासरे। अजमेर मह गढ़ वास्तव्ये राव श्री जगमल राज्य प्रवर्तमाने —
[भविष्यदत्त चरित की प्र०म० २ की प्रशस्ति डा० कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० १४१]

4 बले—हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ १७१।
शारदा—अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव पृ १५७

5 नैणसी की ख्यात जिल्द २ पृ १५४

6 रेऊ—मारवाड़ का इतिहास पृ० ११८

है कि उक्त तिथि तक वीरम का वहां अधिकार' था। श्री रेऊ ने मालदेव का १५९२ के पूर्व ही मेड़ता लेना लिखा है। जिसका उपरोक्त प्रशस्ति से मिलान नहीं होता है अतएव यह तिथि वि सं० १५९२ या उसके बाद ही होनी चाहिए। इसी समय मालदेव ने अजमेर से भी वीरम को भागने को बाध्य कर दिया। 'जयमल वंश प्रकाश' में मालदेव के द्वारा मेड़ता पर २ बार आक्रमण किए जाने का उल्लेख है जिसकी पुष्टि नहीं होती है।

वीरम का चाटसू आदि लेना और मालदेव का उसे वहाँ से भगाना

ख्यातों में लिखा मिलता है कि वीरम देव अजमेर से रायमल शेखावत के पास गया और उससे सहायता लेकर उसने चाटसू लोंसी आदि के भूभाग पर अधिकार कर लिया। यह भूभाग उस समय टोडा के सोलंकियों के अधिकार में था और कछवाहों और इनमें संघर्ष चल रहा था[8]। वि सं० १५९४ की पटपाहुड ग्रन्थ की प्रशस्ति आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहित[9] है। इसमें चाटसू में वीरम को शासक के रूप में वर्णित किया है। यह प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण है और इससे वीरम राठौड़ की इस बीच की गति-विधियों का पता चलता है।

मालदेव ने वीरम का पीछा किया और विक्रम संवत् १५९५ में उसे यहां से भागने को बाध्य कर दिया। आमेर शास्त्र भण्डार में

---

7 'संवत् १५९२ वर्षे शाके १४५७ प्रवर्तमाने वैशाखमासे शुक्लपक्षे तृतीयायां तिथौ रवीवारे। मृगशिर नक्षत्र। श्री मेड़ता नगरे। राजाधिराज श्री वीरमदेव राज्ये— — ——

[प्रशस्तिसंग्रह (श्री शाह द्वारा सम्पादित) पृ० ९१

8 सोलंकी राजा सूर्यसेन सं १५९७ तक जीवित था। इसके पुत्र पृथ्वीराज और पूरणमल थे। पृथ्वीराज का बेटा रामचन्द्र वि०सं० १६८१ में चटगावली आदि में नियुक्त था। पूरणमल आमी का जागीरदार था। इनसे वीरम का संघर्ष हुआ था।

9 संवत् १५९४ वर्षे माहसुदि २ बुधवारे चम्पावती नगरे श्री मूलसंघे

संग्रहित वरांग चरित की वि० १५६५ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि टोंक के आसपास तक मालदेव का राज्य था[10]। श्री रेऊजी ने यहां वि० सं० १५६५ के स्थान पर १५६७ में मालदेव का अधिकार करना लिखा है जो उक्त प्रशस्ति मिल जाने से स्वतः गलत साबित हो जाता है।

वीरम देव भाग कर शेरशाह के पास चला गया। नैणसी लिखता है कि जब मालदेव की फौज मौजमाबाद तक आ गई तब वीरम ने खेमा मेहता को कहा कि इस बार मैं अवश्य लड़कर के मर जाऊंगा। तब मेहता ने कहा कि पराई धरती में क्यों मरें और मरना ही है तो मेड़ता में ही क्यों नहीं जाकर के मरें। इस पर दोनों ही रणथम्भोर के थानेदार के पास गये और उसकी सहायता से ये शेरशाह सूर के पास[11] चले गये। उस समय इस क्षेत्र में मेवात का शासक शाह आलम नियुक्त था जो शेरशाह का सामन्त था। इसके समय में लिखी विक्रम संवत् १६०० की लघु संग्रहिणी सूत्र की प्रति छाणी (गुजरात) के शास्त्र भण्डार में है और वि सं० १६०२ की चाटसू में लिखी षटपाहुड ग्रन्थ की प्रति प्राप्त हुई है जो आमेर शास्त्र भण्डार[12] में है। मालदेव का इस क्षेत्र पर अधिकार कुछ वर्षों तक ही रहा प्रतीत होता है। इस क्षेत्र से मिले वि० सं० १६०४ के टोडा के लेख में राव रामचन्द्र महाराणा उदयसिंह और सलेम शाह सूर का उल्लेख है।

बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नन्द्याम्नाये कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवस्तत् शिष्य श्री धर्मचन्द्रदेवास्तदाम्नाये खंडेलवाला न्वये चम्पावती नगरे राठौड़ वंशे राव श्री वीरमदे राज्ये बाकली वाल गोत्र·········— [डा कासलीवाल—प्रशस्तिसंग्रह पृ १७५]

10 संवत् १५६५ वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठी दिवसे शनैश्चरवासरे उत्तरानक्षत्रे राव श्री मालदेव राज्य प्रवर्तमाने रावत श्री खेतसी प्रतापे सांवोणा ग्राम नगरे श्री शांतिनाथ चैत्यालये" [उक्त पृ० ५५]

11 नैणसी की ख्यात भाग २ पृ० १५६–५७

12 "संवत् १६०२ वर्षे वैशाख सुदि १० तिथौ रविवार

वीरम का मेड़ता लेना

शेरशाह ने विक्रम संवत् १६०० में जब मालदेव पर आक्रमण किया तब बीकानेर का राजा और वीरम भी उसके साथ थे। ख्यातों में प्राय वीरम के विरुद्ध यह दोष लगाया जाता है कि उसने युद्ध के अवसर पर मालदेव के सरदारों के पास चातुरी से रुपये अथवा तलवारें पहुँचा दी और मालदेव को बहलवा दिया कि तुम्हारे सरदार शेरशाह से मिल गये हैं। इसलिए वह भागने को विवश हो गया। इसके विपरीत फारसी तवारीखों में शेरशाह का ही पत्र डालना वर्णित है। यह विवादास्पद[13] है। जो कुछ भी हो वीरम को लगभग वि॰ सं० ११ ० के आस पास शेरशाह ने मेड़ता वापस दिला दिया। इस प्रकार लगभग १० वर्षों तक युद्ध की मुख्य मुख्य तिथियां इस प्रकार होनी चाहिए —

(अ) दौलत खां का वीरम पर आक्रमण वि॰सं॰ १५६०–६२
(आ) वीरम का अजमेर पर अधिकार वि सं॰ १५९२
(इ) मालदेव का मेड़ता लेना वि सं १५९२–९३
(ई) वीरम का चाटसू आदि लेना वि सं॰ १५९३–९५
(उ) मालदेव का चाटसू टोंक आदि लेना वि॰ सं॰ १५९५
(ऊ) वीरम का मेड़ता लेना वि॰ सं॰ ११००

फस्मुएनसमे राजाधिराज शाहआलमराज्ये नगर चम्पावती मध्ये [मरुम।रती प्रकाशित]

13 नैणसी की ख्यात जिल्द ६ पृ॰ १५७–५८। इसमें २० हजार रुपयों की थैली भरवा और कुम्पा के डेरे पर भिजवाना वर्णित है। अन्य ख्यातों में ढालों में जाली पत्र सिलाकर डलवाना वर्णित है [वीर विनोद भाग २ पृ॰ ८१०] फारसी तवारीखों में मालदेव के यहां शेरशाह का पत्र डलवाना वर्णित है [तारीख ए शेरशाही इलियट डोम्सन भाग ४ पृ॰ ४०५। मुन्तखाब उत तवारीख [रैकिंग का अनुवाद], भाग १ पृ॰ ४७८ आदि।

दानवीर भामाशाह परिवार | ८

भारत के इतिहास में भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। देशभक्ति अपूर्व त्याग और स्वामिभक्ति के लिए आज भी उन्हें आदर्श माना जाता है। मेवाड़ के लिए इनकी सेवायें उसी प्रकार उल्लेखनीय हैं जिस प्रकार गुजरात के लिये वस्तुपाल तेजपाल की।

मेवाड़ के महाराणा सांगा की मृत्यु वि॰ सं॰ १५८४ ८५ में खानवा युद्ध के कुछ समय पश्चात् हो गई। उसके उत्तराधिकारी उसके समान शक्तिशाली नहीं थे। भारत में उस समय सत्ता के लिये मुगल और अफगान संघर्ष कर रहे थे और हुमायूं ने सूरवंशी सुल्तान को हटाकर अपना खोया हुआ राज्य वापस प्राप्त कर लिया। थोड़े समय पश्चात् इसकी मृत्यु हो गई। इसका उत्तराधिकारी अकबर अत्यन्त शक्तिशाली था। इसने कई राजघरानों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने राज्य की नींव दृढ़ कर ली। इसने मेवाड़ पर वि सं १६२४ में आक्रमण किया। उस समय वहां का महाराणा उदयसिंह शासक था। राजपूतों ने महाराणा को पहाड़ों में भिजवा कर चित्तौड़ दुर्ग का भार जयमल मेड़तिये को सौंप दिया। राजपूतों की हार हो गई और उदयसिंह कुम्भलगढ़ की तरफ चला गया। वि सं॰ १६२५ की लिखी सम्यक्त्व कथाकौमुदी की प्रति आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहित है जिसमें कुम्भलगढ़ में उक्त राणा के शासनकाल में प्रतिलेखन का[1] उल्लेख है। जिससे

1 संवत् १६२५ वर्षे शाके १४६० प्रवर्तमाने दक्षिणायने मार्गशीर्ष कृष्णपक्षे षष्ठम्यां शनौ श्री कुम्भलमेरु दुर्गे रा० श्री उदयसिंह राज्ये खरतरगच्छे श्रीगुणलाभ महोपाध्याये स्ववाचनार्थं लिखापितं। (सम्यक्त्वकथाकौमुदी प्र० न० १११ आमेर-शास्त्र भण्डार)

कुम्भलगढ़ में उसके राज्य की पुष्टि होती है। धीरे-धीरे अकबर ने मेवाड़ के अधिकांश भाग को अधिकृत कर लिया। यहाँ के महाराणा के पास उस समय धन और सैनिक सामान दोनों की व्यवस्था कर सकने वाले पुरुष की आवश्यकता थी। उस समय रामाशाह प्रधान था किन्तु वह इतना उपयुक्त नहीं था। उसे हटाकर उदयसिंह के वंशज महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान नियुक्त किया। ख्यातों में लिखा मिलता है मामी परधानो करे, रामो कीधो रद।[2]

भामाशाह के पूर्वज

भामाशाह कावड़िया गोत्र का ओसवाल था। इसके पूर्वज अलवर क्षेत्र के रहने वाले थे और सांगा के समय इसका पिता भारमल रणथम्भोर में किलेदार के पद पर था। वह इस पद पर कई वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य करता रहा।

महाराणा सांगा ने अपने अन्तिम दिनों में इस दुर्ग को अपने पुत्र विक्रमादित्य एवं उदयसिंह को दे दिया था। ये दोनों अपनी माता हाड़ी करमेती के साथ यहीं रहा करते थे।[3] बाबर ने अपनी जीवनी तुजके बाबरी में लिखा है कि सांगा की मृत्यु के पश्चात् उक्त रानी ने चित्तौड़ के राज्य को प्राप्त करने में उसकी सहायता चाही थी एवं

---

2 ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २ पृ ११२।

3 ख्यातों में लिखा है कि करमेती पर राणा सांगा का विशेष प्रेम था। एक दिन करमेती ने निवेदन किया कि आप अपने जीवन काल में ही अपने दोनों पुत्रों को जो रत्नसिंह से छोटे हैं रणथंभोर की जागीर दिला दें और सूरजमल हाड़ा को इनकी देखभाल के लिये नियुक्त कर दें तो अधिक अच्छा रहे। सांगा ने ऐसा ही कर दिया। किन्तु उसके मरने के बाद रत्नसिंह और सूरजमल में विग्रह बना रहा और दोनों इसी मामले को लेकर आपस में मन मुटाव रखने लगे। इसके परिणामस्वरूप दोनों ने एक-दूसरे पर घातक आक्रमण कर अपनी जान से हाथ धोया।

रणथम्भीर उसे देने का वचन भी दिया था।[4] किन्तु राणा सांगा का ज्येष्ठ पुत्र एवं उत्तराधिकारी रत्नसिंह शीघ्र ही मार डाला गया एवं हाड़ी करमेती का पुत्र विक्रमादित्य स्वतः चित्तौड़ का स्वामी हो गया। इतना होते हुए भी रणथम्भोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। आमेर-शास्त्र भण्डार में उक्त काल की लिखी कुछ ग्रन्थों की प्रतियां उपलब्ध हैं जिनमें स्थानीय शासक का नाम लिखा दिया हुआ है।[5] अतएव प्रतीत होता है कि इस राजनैतिक परिवर्तन के अवसर पर यह परिवार भी रणथम्भोर से चित्तौड़ चला आया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि उस समय हाड़ी करमेती के पुत्रों का ही राज्य चित्तौड़ में था। यह घटना वि० सं० १५९०-९५ के मध्य सम्पन्न हुई होगी।

भामाशाह की सेवाएँ

भामाशाह का जन्म चित्तौड़ में आषाढ़ शुक्ला १० वि० सं० १६०४ (२८ जून १५४७ ई०) को हुआ था।[6] तपागच्छीय पट्टावली से प्रतीत होता है कि यह परिवार वि० सं० १६१६ के पूर्व अवश्यमेव चित्तौड़ में बस चुका था और किसी दक्षिणी राजा की कृपा से इस परिवार के पास करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति हो गई थी। मूल वर्णन देपागर मुनि के वर्णन के साथ आता है जो परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।

हल्दीघाटी के युद्ध और इसके पश्चात् निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने के कारण प्रताप की लगभग सारी सम्पत्ति विनष्ट हो गई। आजादी का दीवाना प्रताप देश की स्वाधीनता के लिये जंगलों की खाक छानता फिर रहा था। इन भयंकर विपत्तियों के समय भी वह अपने दृढ़ निश्चय पर अडिग रहा था। किन्तु अभावों से दुःखी होकर वह सर्वदा के लिये मेवाड़ छोड़कर जा रहा था। ऐसे समय में भामाशाह ने अपनी सारी सम्पत्ति लाकर के उसके सम्मुख रख दी। कर्नल टाड के द्वारा

4 तुजके बाबरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ० ६१२ ६१३

5 राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ३ पृ० ७१

6 वीर विनोद भाग २, पृ० २५१। ओसवाल जाति का इतिहास पृ० ७४।

दिये गये बयान के अनुसार सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि प्रताप २५ हजार सैनिकों को १२ वर्ष निर्वाह करा सकता था। सम्पत्ति देने के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं कि भामाशाह महाराणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड़ राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानों पर रखा जाता था जिसका ब्योरा वह एक बही में रखता था और आवश्यकता पड़ने पर इन स्थानों से द्रव्य निकालकर लड़ाई का खर्च चलाया जाता था। यह मत सत्य नहीं लगता है क्योंकि बहादुरशाह के मेवाड़ पर दो बार आक्रमण हुए और एक बार शेरशाह का आक्रमण हुआ। इसके बाद अकबर के साथ उदयसिंह का भयंकर युद्ध हुआ। इन युद्धों से मेवाड़ का राजकोष खाली-सा हो चुका था। बहादुरशाह को सांगा द्वारा छीने हुए मालवे के सुल्तान का बहु मूल्य जेवर, जड़ाऊ मुकुट, सोने की कमरपेटी आदि तक देने पड़े थे। अतएव उस समय जो राशि भामाशाह ने दी थी वह स्वयं उसके परिवार की ही थी। लूकागच्छीय पट्टावली के वर्णन के अनुसार इस परिवार के पास करोड़ों की सम्पत्ति थी। इस सम्पत्ति के अतिरिक्त महाराणा ने भामाशाह और उसके छोटे भाई ताराचन्द को मालवा से सम्पत्ति लूट कर लाने को भेजा। दोनों भाइयों ने २० ०० मोहरें लूट करके लाकर महाराणा को प्रस्तुत की[9]। अकबर के सेनापति शाहबाजखां ने पीछा किया और लड़ते लड़ते बसी ग्राम के पास ताराचन्द घायल हो गया। तब बसी का स्वामी सांईदास उसको उठाकर ले गया और उपचार की समुचित व्यवस्था कराई।

इस प्रकार विशाल सम्पत्ति के मिल जाने से प्रताप ने अपनी खोई हुई भूमि को वापस प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली। मेवाड़ में चित्तौड़ व मांडलगढ़ के महत्वपूर्ण दुर्गों को छोड़कर शेष सारे भाग पर उसका अधिकार हो गया था।

---

7 ओसवाल जाति का इतिहास पृ० ७१
8 ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २ प ६६१ ६२
9 डा० गोपीनाथ शर्मा मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स।

मामाशाह और ताराचंद दोनों कुशल सैनिक भी थे। हल्दीघाटी के युद्ध में दोनों सफलतापूर्वक[1] लड़े थे। ताराचंद उस समय गाडवाड़ में सादड़ी ग्राम का हाकिम था। इसने इस नगर की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की थी और शाहबाजखाँ को इसे अधिकृत नहीं करने दिया था।[11] गोड़वाड़ की तरफ से बादशाह की ओर से आक्रमण होते रहते थे। इनका उसने सफलता-पूर्वक मुकाबला किया था।[12] मामाशाह द्वारा जारी किये गये कई ताम्रपत्र भी मिले हैं। ये महाराणा प्रताप के शासनकाल के हैं और वि० सं० १६३३ से लेकर १६५१ तक के मिलते हैं।

(२) वि० सं० १६४४ का दिगम्बर जैन मन्दिर ऋषभदेव का।

(१) वि० सं० १६३३ का कुंभलगढ़ का ताम्रपत्र— महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसींघ आदेशात् आचार्य बालाजी ना किसनदास डसमाइ कस्य ग्रामं १ संचाणो मया कीधो

---

१० वीर विनोद भाग २ प० १५१। ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १ पृ ४३२

११ शाहबाजखाँ बराबर इस क्षेत्र में लड़ रहा था। रामपुरा नवाब की लाइब्रेरी में सुरक्षित तारीख-ए अकबरी जो हाजी मोहम्मद आरिफ कंधारी ने लिखी है इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार वि सं १६३३ में ही अकबर ने शाहबाजखाँ को इस क्षेत्र में लगा दिया था। जैसलमेर भंडार में भोजचरित्र की हस्तलिखित प्रति संग्रहीत है जिसमें वि० सं० १६३४ की प्रशस्ति दी है जिसमें कुंभलगढ़ के लिए लिखा है—'कुंभलगढ़ दुर्गे विग्रहो विजयो भवति' एवं यहां अकबर का राज्य भी उल्लिखित किया है आदि। शाहबाजखाँ को पूर्ण विजय वि० सं० १६३५ में मिली थी। उस समय भी ओसे और भालाकी थे। कंधारी ने "दिखाव और फरेबदारा शब्द प्रयुक्त किये हैं। इस प्रकार निरन्तर दो वर्षों तक शाहबाजखाँ इस क्षेत्र में बराबर लड़ता रहा था।

१२ वीर विनोद, भाग २ पृ० २५७

उसके आपाटे रता कुमलमेर मध्ये संवत् १६३१ वर्ष माहवा सुदी ५ रवौ श्री रण प्रति हुकम दी दो रायभीसाह मामो पहला पतर ले गया लुट्यो गयो सु नवो करे मया कीधो —(मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स पृ० २०८)

इस ताम्रपत्र से स्पष्ट है कि इस संवत् तक भामाशाह मेवाड़ का प्रधान हो चुका था।

(३) वि० सं० १६४९ का ताम्रपत्र जहाजपुर का —

। सिधश्री महाराजाधिराज महाराणा जी श्री प्रतापसिंहजी आदेशातु तिवाड़ी साडूल नारायण भवान काना गोपाल टीका बरती उदक आगे राणाजी श्री श्री ताम्बा पत्र कराये दीधो सो प्रर्थजे जाजपुर रा ग्राम पंडेरमध्ये हुसे बरती दीधा गारा करे दीधो श्रीमुख हुकम हुओ। साह भामा। संवत् १६४५ काती सुदी १२।

(४) वि० सं० १६५१ का ताम्रपत्र—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंह आदेशातु चौबरी रोहितास कस्य ग्राम मया कीधो ग्राम ड्ढिलाणा बड़ा माहे खेत ४ बरसाली रा उदक - - स० १६५१ वर्षे आसोज ।। सुद १५ रव श्रीमुख दीवमान सा० भामा।

इन उपरोक्त विवरणों से उक्त वर्षों में उसके बराबर प्रधान रहने की बात सिद्ध होती है।

वीर-विनोद में दिये गये वृत्तान्त के अनुसार भामाशाह[13] को अब्दुलरहीम खानखाना ने महाराणा को अकबर की अधीनता में लाने के लिए बहुत समझाया था और हर तरह से इसे लोभ दिया गया था किन्तु त्यागमूर्ति भामाशाह ने उसे नकारात्मक उत्तर दे दिया।

लुंकागच्छ की सेवायें

। भामाशाह-परिवार लुंकागच्छ का मानने वाला था। उक्त पट्टावली में दिये गए वृत्तान्त के अनुसार भीलवाड़ आदि मेवाड़ के कई ग्रामों

---

१३ उक्त प० १५९। ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, प० ४४६

में मू कामगच्छ के फलाव के लिए इसने बड़ी सहायता भी की थी। कई दिगम्बर परिवारों तक को इसने दीक्षित कराया था। लोगों को लाखों रुपयों की धन से भी सहायता दी थी। ताराचंद ने भी गोडवाड़ में इस कार्य को किया था। मोहनलाल दलीचंद देसाई लिखते हैं[14] कि भामाशाह के भाई ताराचंद को गोडवाड़ की हाकिमी मिलते ही वह सादड़ी में रहने वाले लुंकागच्छीय साधुओं का पक्ष लेने लगा। उसने मूर्तिपूजा बन्द तो नहीं कराई किन्तु पुष्पादि वस्तुयें इसके लिए वर्जित कराईं। इसके प्रभाव के कारण कई लोग लूंकागच्छ में आ गए। उसने मूर्तिपूजकों पर कई अत्याचार किए। श्री देसाई ने अत्याचार का यह कथन श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गोडवाड़ और सादड़ी मूर्तिमतियों के मतभेद का दिग्दर्शन नामक पुस्तक के आधार पर लिखा है जो कहां तक सही है कहा नहीं जा सकता।

कलाप्रेमी ताराचंद

ताराचंद बड़ा कलाप्रेमी था। इसने सादड़ी में विशाल बावड़ी बनवाई थी और उस पर एक शिलालेख भी लगवाया था। यह बावड़ी इसके मरने के बाद इसके पुत्र ने पूरी की थी। इसका शिलालेख अभी जीर्णोद्धार के समय वहां से हटा लिया गया प्रतीत होता है। मैंने कुछ वर्ष पूर्व इसकी छाप ली थी और इसे प्रकाशित भी कराया था।[15] यह बावड़ी स्थापत्यकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। ताराचंद के यहां कई संगीतज्ञ भी थे। बावड़ी में उसकी छत्री के समीप इसकी चार स्त्रियों की मूर्तियां हैं। इसके अतिरिक्त एक खवास ६ गायिकाएं, एक गवैया और एक गवैया की स्त्री की मूर्तियां भी खुदी हुई हैं। इन पर वि० सं० १६४८ वैशाख वदि ८ के लेख हैं। इनसे प्रतीत होता है कि कलाओं का यह बड़ा संरक्षक था। बावड़ी में उसके बैठने का स्थान दर्शनीय है। यह साहित्य प्रेमी भी था। हेमरत्न ने प्रसिद्ध

---

१४ जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास पृ० ५६६

१५ मरु भारती सन् १६६६ अंक ३ पृ० ९ से १०

गोरा बादल चौपाई[16] इसके पास रहकर के ही लिखी थी। इसकी प्रशस्ति से प्रताप के अन्तिम दिनों में इस परिवार की स्थिति का पता चलता है।

भामाशाह के वंशज

भामाशाह की मृत्यु वि० सं० १६५६ में हुई थी।[17] महाराणा प्रताप के बाद उसके पुत्र अमरसिंह के समय में भी वह इस पद पर विद्यमान रहा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जीवाशाह मेवाड़ का प्रधान बनाया गया। कर्णसिंह के साथ संधि के समय वह जहांगीर बादशाह के पास गया था।[18] इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका पुत्र अक्षयराज मेवाड़ का प्रधान[19] बना था। इसके बाद सम्भवत इसके वंशजों को यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सका। *किन्तु इनका सम्मान यथावत् बना रहा।* महाराणा स्वरूपसिंह जी के समय एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि ओसवालों की न्यात में प्रथम तिलक किनको किया जावे? इस पर महाराणा ने वि सं० १९१२ ज्येष्ठ १५ बुधवार को एक पट्टा लिखकर भामाशाह के परिवार वालों की प्रतिष्ठा बनाये रखने और उनको प्रथम तिलक करने का आदेश दिया।[20]

---

१६ संवत् सोलहसइ पणमाल। श्रावण सुदी पचमी सुविसाख ॥
पृथ्वी पीठि प्रगु पर गही। सबल पुरी सोहइ सादडी ॥
पथ्वी परगट राणा प्रताप। प्रतपइ दिन दिन अधिक प्रताप ॥
तस मंत्रीसर बुद्धिनिधान। कावड़िया कुल तिलक निधान ॥
सामिधरमी पुरी भामुसाह। अमरी बस विधुपसि राह ॥

१७ ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २ पृ० ११२११

१८ उक्त भाग २ पृष्ठ १११

१९ उक्त

२० 'स्वस्ति श्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री स्वरूपसिंहजी आदेशात् कावड़या जैचंद कुनणो वीरचन्द कस्य अप्रंच थारा बडा बासा भामो कावड्यो ई राजम्हे सामध्रम काम चाकरी करी जिणी मरजाद ठैमू ई या है—महाजना की जातम्हे बावनी त्या

इस प्रकार भामाशाह की सेवाओं से मेवाड़ की ही रक्षा नहीं हुई अपितु समस्त हिन्दू जाति का महान उपकार हुआ। अगर यथा समय धन की सहायता भामाशाह-परिवार नहीं देता तो संभवत प्रताप मेवाड़ छोड़कर चले जाते। यहां का इतिहास कुछ और ही होता। प्रताप की त्याग बलिदान और अपूर्व साहस की कहानी के साथ-साथ भामाशाह की स्वामिभक्ति और देशभक्ति की गाथाएं सदैव गाई जाती रहेंगी।

सादड़ी का शिलालेख

सादड़ी का उक्त तारा बावड़ी का शिलालेख महाराणा अमरसिंह के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों का है। इसमें भामाशाह के पिता भारमल से वंशावली दी हुई है। इसमें कुल २२ पंक्तियां हैं। लेख वि० सं० १६५४ वशाख वदि २ का है। ताराचंद उस समय स्वर्गस्थ हो चुका था। उसके पुत्र सुरताण ने इसकी प्रतिष्ठा कराई थी। लेख में भामाशाह की माता कपूरदेवी का उल्लेख है। यह लेख इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि महाराणा प्रताप के अन्तिम दिनों में इस क्षेत्र को मुसलमानों से पूर्ण रूप से मुक्त करा लिया था। इस बात की पुष्टि वि० स० १६५१ के डेवला (गोड़वाड़) ताम्रपत्र से होती है। यह ताम्रपत्र भामाशाह के हस्ताक्षरों से जारी किया गया था।

- मानपुरीय परिशिष्ट मु का पञ्चीम पट्टावली में भामाशाह का वर्णन

"......तत्पट्टे श्री देवागर सूरयो अमूरस्ते परीक्षक वंशोधा कोटडा लिपमे वैसरी भामा जनक भलवती जननी मामोरपुरे वारित

चोका को जीमण वा सीम पूजा होवे जीम्हे यह पहेली तलक वारे हो सो अमला नगर सेठ वेणीदास कासो कार्यो मर बेदर्यादा तलक वारे नहीं करवा दीवो अबार वारी सालसी दीदी सो मगे करी अर प्यात म्हे हुसर म सुन हुई सो अब तलाक माफक दस्तूर के वे पारो करांवा वाजो बाना मु पारा हुकम कर दीदो है सो पेली तलक वारे होवेगा। प्रधानजी मेहता सेरसींग संवत् १६१२ ज्येष्ठ सुदी ... हुओ......।।

पदमपि तत्र तत्र संवत् ११११ चित्रकूट महादुर्गे नामविख्यातो भारमल्ल नामी तदा धनीमोऽभूत् । तेन देवाचारसूरीणामभिधान पुरस्कि- भाचारकर्त्तव्यं च मतम् । तदाचित एव तद्गुणरञ्जितचेतस्कोऽवदत् श्लोकः—

नमो देवाचारस्वामी प्रदीपो जैनशासने ।
एष एव महर्षेऽस्ति नायोऽत्र तमिदेवकम् ॥

इति भावनया शुभारमाऽभूत् भारमल्ल तस्मिन्नवसरे तमस्यो मामा नामो नाहटोऽस्ति । तद्गृहे पुण्योपाय दक्षिणावर्त शङ्ख प्रादुरभूत् तस्मादिमाद् पूर्वेऽष्टादशकोट्यो धनस्य प्रकटी भवन्ति...एकदा तत्र सन्तानवैभवपात्रो धर्मध्यानं विदधत साधुगुणधामाभिराम श्रीदेवाचार स्वामी पुत्र तपोधनो भारमल्लेन पृष्टो विविध धर्मितत्त्व । पुत्रधर्मोपदे धामूर्तं पीर्तं श्रवणात्मनाम् । अति प्रसन्नेन भारमल्लेन विमृष्टमहो । महान भाग्योदयो मे प्रकटितोपदेशेषु गुणगौरवो दृष्टः सर्वेऽपि मे देवस्वस्ति । तदा भारमल्लस्यान्वये च बहव श्रावका जाता नाथोदी मुद्-कम गीता । अत्र भारमल्लस्य मामामामकगुणोऽभूनि । महान् मह कथ । सर्वत्र दानादिनाऽभिजनमनोरथा पूरिता अन्येपि तारायंत्रादय पुत्रा अभूवन् । तत्र नाम पाडतारायंत्री विभुतौ जातौ । स्वगच्छवनेण बहुधोजन स्वपरो समानीता । पुन श्री राणाजीतोऽस्मात्प पर्वं आसा बहिनी जातौ । ताराचन्द्र एण सादडीनाम नगरं स्थापितम् । सर्वत्र गोपचघासादिकानि स्थानानि कारितानि । स्थाने स्थाने पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे बहुजनेभ्यो धनं धार्य धार्य स्व धनीमा कृता । श्री नाथोदी पुत्राश-धर्णोऽसितस्वातिभाप । पुन भामाशाहेन विनश्वरमथवा भरतिष गोरा स्वगणेसमानीता । बहु स्व दत्वा १७०० ग्रहाणि देवामात्मीयानो करामि । चित्तकादि पुरेषु तदा च जातं श्रावकप्रहाणां चतुर धीतिसहस्राधिकं समस्तेकम् ।......

(मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ से)

कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास | ६

प्रतिहार साम्राज्य के विघटन के पश्चात् उत्तरी भारत में कई नये राज्य स्थापित हो गये । इनमें उल्लेखनीय गुजरात के चालुक्य, मालवा के परमार और अजमेर के चौहान थे । इनके अतिरिक्त अन्य कई छोटे २ राज्य भी स्वाधीन हो गये जिनमें ग्वालियर, दूबकुण्ड और नरवर के कछवाहा भी हैं ।

कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकारमय है । निश्चित प्रामाणिक सामग्री के अभाव में तिथि-क्रम इतिहास प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है । ख्यातों के आधार पर कछवाहों की उत्पत्ति राम से[1] मानी गई है । ऐसी मान्यता है कि ये लोग प्रारंभ में अयोध्या से रोहतासगढ़ गये वहां नरवर आकर[2] बस गये थे । १० वीं शताब्दी के पश्चात् से कछवाहों का ग्वालियर, दूबकुण्ड नरवर और आम्बेर की शाखाओं का जो इतिहास मिलता है उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है —

---

१ बड़े बंस श्री रामके कछवाहे रछ साजि ।
आये नरवर तें कियो देस ढूंढाड़ राज ।।५७

२ पोलिटिकल हिस्ट्री आफ जयपुर स्टेट by T O बुक एवं श्री J P स्ट्रेटन द्वारा लिखित 'दी जयपुर आम्बेर फेमिली एण्ड स्टेट' की जयपुर स्थित प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की टाइप्ड प्रतियों के पृष्ठ क्रमश २८ और ५ ।

ग्वालियर के कछवाहा

कुछ शिलालेखों के अतिरिक्त इस शाखा के इतिहास जानने का कोई साधन नहीं है। वि. सं. ११५० के सासबहू के मन्दिर का लेख इनका पहला विस्तृत लेख है जिसमें निम्नांकित ८ राजाओं का उल्लेख है यथा:– (१) लक्ष्मण (२) वज्रदामा (३) मंगल (४) कीर्तिराज (५) मूलदेव (६) देवपाल (७) पद्मपाल और (८) महीपाल।

लक्ष्मण—लक्ष्मण के पिता और निवास स्थान का उल्लेख नहीं मिलता है। यह निश्चित है कि इसका ग्वालियर पर अधिकार नहीं था। उस समय ग्वालियर दुर्ग पर प्रतिहारों का अधिकार था। ग्वालियर से वि. सं. ६३२ माघसुदि का एक लेख भोज प्रतिहार के समय[३] का मिला है। इसके पश्चात भी कई वर्षों तक इस दुर्ग पर प्रतिहारों का ही अधिकार रहा प्रतीत होता है। लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा की तिथि सं. १०३४ है। अतएव उसमें से २० औसतन वर्ष कम करके १०१४ लक्ष्मण की तिथि मान सकते[४] हैं। सासबहू मंदिर के लेख से विदित होता है कि वज्रदामा ने सबसे पहले ग्वालियर दुर्ग को विजित किया था। लक्ष्मण के लिये इस लेख में यह वर्णित है कि उसने प्रजा के हित के लिये पृथु की तरह हथियार धारण किये थे। अतएव इतना अवश्य पता चलता है कि उसने कहीं अपना छोटा राज्य अवश्य बना लिया था। कुछ ख्यातों में इसे ढोला राव का पुत्र भी वर्णित किया है और नरवर से ही आकर ग्वालियर जीतना लिखा है। लेकिन उसकी पुष्टि अब तक किसी प्रामाणिक सामग्री से नहीं

---

३ — "संवत ६३२ माघसुदि २ अद्येह श्रीगोपगिरोस्वामिह परमेश्वर श्रीभोजदेव तदधिकृत कोट्टपाल ...स्य बलाधिकृत तुर्क स्थानाधिकृत श्रेष्ठि अल्लियाक इत्युवाक सार्थवाह.... —'
[जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी बगाल भाग ३१, पृ० ३६५]

४ पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नोर्दर्न इंडिया फ्राम जैन सोर्सेज पृ० ७१–८२

हो जावे अब तक इसे नहीं माना जा सकता है। लक्ष्मण का विशेषण 'क्षोणीपतेर्लक्ष्मण' लिखा मिला है। अतएव यह छोटा राजा रहा होगा।[५]

वत्सदामा— वत्सदामा लक्ष्मण का पुत्र था। सुहानियां से प्राप्त एक जनमूर्ति के लेख में इसे महाराजाधिराज वत्सदामा लिखा है। इस लेख की तिथि वि सं १०१४ है।[६]

सासबहू के मन्दिर के लेख में इसके द्वारा ग्वालियर दुर्ग को जीतने और गाधिनगर के राजा को हराने का उल्लेख है।[७] यहां गाधिनगर के राजा का तात्पर्य कन्नौज के प्रतिहारों से है।[८] उस समय विजयपाल शासक था।[९] इन अन्तिम प्रतिहार सम्राटों के समय राज्य की शक्ति बहुत कमजोर हो गई थी। वि सं १०११ के खजुराहो लेख में धंगदेव द्वारा गुर्जर प्रतिहारों को हराकर कालिंजर जीतने का उल्लेख

५ आसीद्वीर्य वपुष्तेजा तनयो नि क्षेप भूमीभृतां।
 वंश कच्छप घात तिलका क्षोणीपतेर्लक्ष्मण।
 य कोदण्डधरः प्रताहितकरवत्सं स्वचित्तामुगात्—
 मेरू पर्वतसूनुनानि ह्रदात् दाय पृथ्वीभृत ॥५॥

[उपरोक्त पृ० १११]

६ सम्वत् १०१४ श्रीव दामा महाराजाधिराज वइसाखवदि
 पाचमि–[उपरोक्त प १११ एवं जैन लेख संग्रह भाग २ पृ ११८]

७ तस्मादजनरोपम क्षितिपवत्सदामाभव दुर्गारोहिविनिर्जिताद्रदंडविजितो गौरादिदुर्गपुरा। निर्व्याजस्परिधुय वैरिनगराधीशप्रतापोदयं यशोरत्नमूचक समभवत् प्रोद्बोधनात्रिविमि ॥६॥

[उपरोक्त पृ १११]

८ डा त्रिपाठी –हिस्ट्री आफ कन्नौज पृ १२

९ वही प २७६। पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नोर्दर्न इंडिया फ्राम जैनसोर्सेस पृ ७३। दी एज आफ इम्पिरियल कन्नौज पृ १७-१८

मिलता है।[10] इतना होते हुए भी समसामयिक विनायकपाल को महाराज के रूप में वर्णित[11] किया। इससे प्रकट होता है कि यद्यपि उस समय प्रतिहारों की शक्ति अवश्य कम हो गयी थी फिर भी परम्परागत मान्यता अवश्य दी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय चन्देल राजपूत शक्ति बढ़ाते जा रहे थे। संभव है कि वज्रदामा ने भी ग्वालियर विजय करने में इनसे सहायता ली होगी। डा० गुलाबराय चौधरी वज्रदामा को चन्देलों का सामन्त राजा मानते हैं किन्तु यह आधारहीन प्रतीत होता है। इसके २ पुत्र सुमित्र और मंगलराज हुए। मंगलराज ग्वालियर का अधिकारी हुआ और सुमित्र को कुछ ख्यातों के अनुसार नरवर का राज्य दिलाया गया। वज्रदामा की मृत्यु आनन्दपाल और मोहम्मद गजनवी के मध्य हुए युद्ध में ३१ १२। १००१ को हुई मानी जाती है।[12]

राजा धंगदेव के खजुराहो के लेख श्लोक २१३ एवं ५० एपिग्राफिआ इंडिका भाग १ पृ १२२ इस लेख में वर्णित विनायकपाल के सम्बन्ध में डा त्रिपाठी की मान्यता है कि यह विनायकपाल है। जिसकी अभिलिखित ए डी ९४२ या ९९९वि० मिली है। इसके पश्चात् महेन्द्रपाल इसका उत्तराधिकारी हो गया था। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि इस शिला लेख का प्रारम्भ ९४२ ई के पूर्व ही तयार कर लिया गया होगा किन्तु उत्कीर्ण इसके बाद ९५४ A D या १०११ के आसपास किया गया होगा होगा। [डा त्रिपाठी हिस्ट्री आफ कन्नौज पृ० १२]। डा० राय के अनुसार यह विनायकपाल II था [इंडियन एंटिक्वेरी vol LVII page २१२]।

११ राजोरगढ़ से प्राप्त मथनदेव के लेख में 'महाराजाधिराजपरमेश्वर' प्रयुक्त हुआ है। मथनदेव सम्भवतः पूर्ण स्वतन्त्र शासक था [री एच आफ इम्पिरियल कन्नौज पृ० ३८-३९]।

१२ श्री जगदीशसिंह गहिलोत-जयपुर राज्य का इतिहास पृ ५८

मंगलराज—बयाना के पास "उखामन्दल" के शिलालेख में मंगलराज का उल्लेख है। इसमें उसके वंश वगैरा का उल्लेख नहीं है। किन्तु विद्वान् लोग मानते है कि यह मंगलराज ग्वालियर का कछवाहा राजा ही है। यह शिव का भक्त था। इसके द्वारा कई युद्धों में भाग लेकर शत्रुओं को हराने का भी उल्लेख मिलता है।[13]

महमूद गजनवी ने जब ग्वालियर पर आक्रमण किया था तब मंगलराज या कीर्तिराज शासक रहा होगा।

कीर्तिराज—यह मंगलराज का पुत्र था। इसका मालवे के राजा के साथ युद्ध होना विख्यात है। सास बहू के मन्दिर की प्रशस्ति में केवल मालवे के राजा से युद्ध करना वर्णित है।[14] झालावाड़ में मालवे के परमारों का अधिकार था। शेरगढ़ और झालरापाटन से मालवे के राजा उदयादित्य की प्रशस्तियाँ मिली हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तिराज ने राज्य विस्तार हेतु बयाना से आगे बढ़कर झालावाड़ में अधिकार करना चाहा हो। दूब कुण्ड के कछवाहा उस समय मालवे के परमारों के सहायक थे। उक्त शाखा के कछवाहा अभिमन्यु के लिये लिखा मिलता है कि मालवे के राजा भोज ने भी उसकी प्रशंसा की थी। उसके पुत्र के समय का एक शिलालेख भी बयाना से मिला है। अतएव पता चलता है कि भोज ने कीर्तिराज को हराकर उससे बयाना के आसपास का भू भाग छीन लिया और दूबकुण्ड शाखा के कछवाहों को दे दिया प्रतीत होता है। यह शिव का बड़ा भक्त था। इसके द्वारा कई शिवमन्दिर बनवाये गये थे।[15]

---

१३ ततो रिपुध्वान्तसहस्रभामा नृपोभवन्मंगलराजनामा।
यशोस्वरैरप्रणतिप्रभावाम्मडरवराणाम्प्रणत सहस्रे ॥८॥
[सासबहू मन्दिर का लेख]

१४ श्री कीर्तिराजो नृपतिस्ततोभूद्यस्य प्रमाणेषु चमूसमूहै
भूलीवितानै —— —तेन प्रौर्योविना यत्ते मालवभूमि
यस्यप्रमरेसद्यामतीतोजित—————— —(उपरोक्त)

१५ मयूरसिंहपानीय नगरे येन कारितं।
कीर्तिस्तम्भ इवाभाति प्रासाद पार्वतीपतेः ॥ ११ ॥ (उपरोक्त)

इसके बाद मूलदेव देवपाल और पद्मपाल शासक हुए। मूलदेव बड़ा प्रतापी हुआ। सासबहू मन्दिर की प्रशस्ति में वर्णित है कि इसने कई युद्ध किये थे एवं चक्रवर्ती के राज्यचिन्ह भी धारण किये थे।[16] अतएव पता चलता है कि इसने प्रथम बार स्वतन्त्र शासक के रूप में कार्य किया था। पद्मपाल देवपाल के बाद शासक हुआ। इसने ग्वालियर में पद्मनाथ का मंदिर बनवाना प्रारम्भ किया था किन्तु उसकी अकाल मृत्यु हो गई। इस कारण इसका छोटा भाई महिपाल शासक हुआ। यह वि सं० १०५० में ग्वालियर में शासक था।

वि० सं ११५१ से ग्वालियर का एक और लेख मिला है। इसमें महिपाल[17] और भुवनपाल नामक शासकों का उल्लेख है।[18] दोनों ही शिलालेखों के रचयिता एक ही व्यक्ति अर्थात् यशोदेव दिगम्बराचार्य है। यद्यपि सं० ११५१ के इस लेख में 'कछावा' शब्द का प्रयोग नहीं है। किन्तु यह निश्चित है कि ये राजा कछावा ही थे। सासबहू के मन्दिर के लेख में वर्णित महिपाल के पश्चात् भुवनपाल शासक हुआ था। इसके लिये कई विशेषण प्रयुक्त हुये हैं। इसे गणित आदि कई विषयों का ज्ञाता वर्णित किया गया है। यह संस्कृत का विद्वान् था। इसका विरुद 'भुवनैकमल्ल'' भी था।

---

१६ तस्मादजायतमहामतिमूलदेवः पृथ्वीपतिर्भुवनपाल इति प्रसिद्धः।
भीतवरस्यदभिनिस्वितचक्रवर्ति चिन्हैरलंकृततनुर्मनुतुल्यकीर्तिः ॥१२॥
(उपरोक्त)

१७ अधिष्ठाय भोपालिकैराधिपत्ये वशी भूमिपालो महिपाल देवः।
प्रतिपालितप्रशमिव लोकदलोपेऽसमस्तपदां धारित्रीं व्यधत्त।
दिशास्वितु मस्वती संयम् यो रसकीर्ति त्रिलोकी तटान्ते व्ययत्ता-
वेदसवन्ति करवपाशिकष्टे .... ॥ १ ॥
(जिनमंदिर की प्रशस्ति)

१८ ....भुवनपालनृपस्यविरणामयागमनियोगनिर्बन्धनकेलिना।
गणिततत्त्वसमस्तलिपिज्ञाता पुणक्तस्तयेनऽस्य भुवनेषु॥
(उपरोक्त)

इसके बाद वि० सं० १२२६ के एक लेख में 'विजयपाल, सुरपाल और मनयपाल नामक राजाओं का उल्लेख है। इस लेख में राजाओं के वंश का उल्लेख नहीं है। विद्वान लोग इन्हें भी कछावा के वंशज मानते हैं किन्तु ये किसी अन्य वंश के भी हो सकते हैं। केवल मात्र नाम के आगे "पाल" शब्दों के साम्य से ऐसी मान्यता विश्वसनीय नहीं हो सकती है। फारसी तवारीखों से पता चलता है कि कुतुबुद्दीन ने जब ग्वालियर पर आक्रमण किया तब वहां सोलंकपाल शासक था। अल्तमश के आक्रमण के समय वहां मेलपाल या मलिकदेव नामक कोई शासक था। इन राजाओं के सम्बन्ध में कोई अन्य विस्तृत एवं विश्वसनीय सामग्री प्राप्त नहीं हुई है।[19] इस शाखा का अन्त मुस्लिम आक्रमणों से हुआ था।

नरवर शाखा

जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कछावा नरवर में भी काफी समय तक रहे[20] थे। इस शाखा का सबसे उल्लेखनीय शासक ढोला था। इसका शासन काल १० वीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। यह नाम इतना प्रचलित है कि आज भी राजस्थान में इसे नायक के रूप में वर्णित किया जाता है। इसके मरवण के साथ विवाह करने की कथा बड़ी प्रचलित है। इस सम्बन्ध में राजस्थानी गीतों में ही नहीं साहित्य में भी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

ढोला के बाद की वंशावली में बड़ा मतभेद है। सुमित्र के वंशजों के पास नरवर का राज्य रहना कई ख्यातों में माना गया है। वि० सं० ११७७ कार्तिक वदि अमावास्या के एक दानपत्र की प्रतिलिपि देखने को मिली है जिसमें शरदसिंह के पुत्र वीरसिंह का उल्लेख है। इसमें शरदसिंह के कई विशेषण लगे हैं जो कादम्बरी में प्रयुक्त राजा

---

१९ इलियटचहिस्ट्री आफ इण्डिया Vol 2 पृष्ट २२७—२२८ एवं ३२७

२० पूगलि पिंगलउ नए राजा नरवर नयरे।
    आविठा दूरिट्ठाये सगाई वडप संजोगे ॥ १ ॥
    [ढोलामारु रा दूहा]

गुणक के विशेषणों की याद दिलाते हैं। इसकी तुलना पांचों पाण्डवों दुर्योधन आदि से की गई है।[21] इसकी रानी का नाम कलमा देवी था। इससे वीरसिंह उत्पन्न हुआ। इस दानपत्र में स्पष्टरूप से कच्छपघाती शब्द अंकित है।

आम्बेर के कछवाहा राजा भी इसी शाखा से सम्बन्धित हैं। सं० ११७७ के बाद इस शाखा का इतिहास अभी उपलब्ध नहीं हुआ है।

दूबकुण्ड के कछवाहा

इस शाखा का एक विस्तृत शिलालेख वि सं ११४५ का मिला है। इसमें ५ राजाओं का वर्णन है—(१) युवराजदेव (२) अर्जुनदेव (३) अभिमन्यु (४) विजयपाल और (५) विक्रमसिंह। इस लेख में यह अंकित नहीं है कि इस शाखा के राजा दूबकुण्ड के आने से पूर्व कहां थे?

युवराज देव के लिये कोई सामग्री इस लेख में नहीं दी गई है। इसका पुत्र अर्जुन था। उक्त लेख में इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। इसे नृपति शिरस ही लिया गया है। यह विद्याधर चन्देल का सामन्त था। इस लेख में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया है कि इसने विद्याधर चन्देल के लिए राज्यपाल को मारा था। यह राज्यपाल प्रतिहार

---

२१ ——संवत ११७७ कार्तिक वदि अमावस्यायां रविदिनेऽद्येह श्रीमज्जयपुरमहादुर्गे परमवैष्णवपरमब्रह्मण्योदीनानाथ इव गुण-गणोऽनेकगुणगणालङ्कृतशरीरः पितृमातृचरणाम्बुजसमुपासनपरो युधिष्ठिरवत सत्यवादी भीमसेनवद्वारपराक्रमः अर्जुन इव धनुर्धरो कर्ण इव त्यागार्जितकीर्तिः दुर्योधन इव महामानी मृगराज इवाऽप्रतिमपराक्रमः समरसमुपागतोद्दुर्वाररिपुघटावारणसंघट्टघटनोपार्जितयशः भुजार्जिताखिलमहीमंडल श्रीमत्कच्छपघातान्वयः कमलमार्तण्डो महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवर्धसिंहदेवपादानुध्यातपर परमराज्ञी श्रीज पमादेवीगर्भरत्न करोत्पन्नमाणिक्यमूर्ति—परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवीरसिंहदेवो विजयी ——

बनी सम्राट[२२] था। राज्यपाल के उत्तराधिकारी त्रिलोचनपाल के समय ही सुल्तान मोहम्मद ने १०२७ ई में इस पर आक्रमण किया था।

इसका पुत्र अभिमन्यु हुआ। यह परमार राजा भोज का सामन्त था और इसके अधीन रहकर लड़ा भी था। उक्त लेख में 'यस्माद्गुरुवाह वाहनमहास्त्रप्रयोगादिषु प्राविण्य प्रविकत्थित प्रभुमपि भोजपृथ्वीभुजा' उल्लेखित है। जबकि ऊपर कहा गया है कि भोज ने इसे बयाना के आसपास का इलाका दे दिया था।

अभिमन्यु के बाद विजयपाल शासक हुआ। इसके समय का ई० ११०० का एक लेख बयाना की मस्जिद पर लगा हुआ है। इस लेख में १८ पंक्तियाँ है। इसकी पाँचवी पंक्ति में 'अधिराजविजय' नामक राजा का उल्लेख है। इसके राज्य में श्रीपथ नगर के जैनाचार्य महेश्वर सूरि जो काम्यक गच्छ के आचार्य थे की मृत्यु होने पर 'निषेधिका' बनाने का उल्लेख मिलता है। इसके पश्चात विक्रमसिंह राजा[२३] हुआ। इसके समय का ही दूबकुण्ड का शिलालेख है। इस लेख में कुल ६१ पंक्तियाँ हैं। इसमें चन्दोभा नगर का वर्णन है जो वतमान दूबकुण्ड ही रहा प्रतीत होता है। इसमें ऋषि और दाहड़ नामक २ व्यक्तियों द्वारा जैन मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। इस

२२ आसीत्कच्छपघातवंशतिलकस्त्रैलोक्यनिर्यद्यशः पांशुभूराजसुतः सम स्तभूमिसेनागुरः। श्रीमानर्जुन भूपतिः पतिरपामप्याप यत् स्वर्ता मो मौमीयपुरेण निर्जितजग (त्र) स्त्री प्रभुत्वियया। श्रीविद्याधरदेवका र्यनिरतः श्रीराज्यपाल हठात्कण्ठास्थिच्छिदनेकवाणनिवहैर्हत्वा मह त्याहवे। (दूबकुण्ड का लेख पंक्ति १०-१२)

२३ 'अथैतस्य जिनेश्वरमंदिरस्य नित्यार्चनपूजनसंस्काराय कालान्तर स्फुटितप्रतीकारार्थं च महाराजाधिराजश्रीविक्रमसिंहः स्वपुण्य राशरप्रतिहतप्रसर परमोपचय मनसि [नि] धाय गाग्रे प्रतिवि धोषक गोधूमगासीजनुष्टयमापयोर्म्य लेखा [उपरोक्त प० ५४ से ५६]

मंदिर के लिये विक्रमसिंह ने प्रत्येक मोणी अनाज पर विंशोपक($\frac{1}{20}$) कर लगाया।

इसके पश्चात् इस शाखा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

आम्बेर के कछावा

आम्बेर के कछावों का प्रारम्भिक प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है जो कुछ सामग्री उपलब्ध है वह पश्चात् कालीन लेखकों द्वारा लिखी गई है।

सोढ़ा —नरवर के शासक सुमित्र के वंशजों से ही आम्बर के कछावों की उत्पति मानी गई है। ख्यातों में सुमित्र के बाद मधुब्रह्म कहान देवानिक, ईशासिंह सोढ़देव आदि नाम मिलते हैं। ऐसी भी मान्यता है कि ईशासिंह को करोली के आस पास जागीर मिली हुई थी। सबसे पहले सोढा ने दौसा का भाग छीन कर एक छोटा सा राज्य स्थापित किया। कुछ ख्यातों में सौढ़ा के स्थान पर उसके पुत्र दुल्हराय द्वारा राज्य स्थापित करना भी मिलता है। टॉड ने भी ऐसा ही माना है। वह लिखता है कि दुल्हराय को स की माता ने बाल्या वस्था में लाकर खोह मय में शरण दी थी।[२५] कुछ ख्यातों में ऐसा भी मिलता है कि वह कुछ समय के लिये अपने पैतृक राज्य अपने मानजे को देकर दौसा विवाह करने के लिये आया था। यहां काफी समय तक रहा था। जब उसे मालुम हुआ कि उसके मानजे ने अपने राज्य पर अधिकार कर लिया है तो वह लम्बे समय से बचने के लिये दौसा को अपने अधिकार में कर लिया। रावल नरेन्द्रसिंह ने दुल्हराय का विवाह मौरां के चौहान राजा सालार सिंह जिसे राल्हणसी भी कहते हैं की पुत्री कुमकुमदे के साथ होना वर्णित किया है।[२६] उसे राल्हणसी ने यहीं ढूंढाड प्रदेश में रहने को कहा और दौसा के आसपास का भू भाग उसे जीत कर देदिया। दौसा में उस समय बड़गूजर शासक

२४ श्री मेहबोव जयपुर राज्य का इतिहास (१९६६) पृ० ५८।
२५ एनल्स एण्ड ऐ टीक्वीन्टिस भाग २ पृ २८०
२६ ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर पृ १६–२०/मीणा इतिहास–पृ.१११

है। नैणसी ने सोढदेव द्वारा दौसा में राज्य स्थापित करना लिखा है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

दुलहराय

पृथ्वीराज विजय और कच्छप वंश महाकाव्य के अनुसार दुर्लभराय को कुलदेवी की प्रेरणा मिली और राज्य विस्तार की उसे प्रबल कामना हुई।[27] इस सम्बन्ध में ख्यातों में लिखा मिलता है कि मांची के सीहरावटी मेदा मीणा के साथ संघर्ष करते हुये एक बार दुलहराय की हार हो गई अतः वह बहुत ही हतोत्साहित हो गया। इस पर उसने देवी की आराधना की और देवी से प्रेरणा लेकर उसने मांची पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया।[28] गेटोर घाटी और झोटवाड़ा के मीणाओं के राज्य भी सम्भवतः इसी ने समाप्त किये थे। कर्नल टॉड की मान्यता है कि इसकी मृत्यु मांच के मीणाओं के साथ हुए संघर्ष में हुई थी। मीणाओं का सर्वप्रथम इतिवृत प्रस्तुत करने वाले विद्वान् लेखक श्री रावत सारस्वत की इस सम्बन्ध में मान्यता है कि दुलहराय ने सबसे पहले खोह का राज्य लिया था।[29] खोह का राज्य मिल जाने पर अपने ससुर मोरां के चौहान शासक की सहायता से दौसा के बड़गूजरों को हराकर उस पर दुलहराय का अधिकार कर लेना ठीक लगता है। दौसा के बाद मांची के मीणों से लड़कर उसे मांची लेना और उनसे लड़ते हुये ही काम आना—दुलहराय के जीवन का प्रधान इतिवृत है। दुलहराय ने ढूंढाड़ में वि सं ११२५ के आसपास राज्य स्थापित किया था। जयपुर राज्य के अन्य विवरणों में यह तिथि भिन्न २ प्रकार से लिखी मिलती है। भू पू जयपुर राज्य की १९४१ की रिपोर्ट (एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट) में दुलहराय की मृत्यु वि सं १०९३ में होना वर्णित किया है। इसमें दुलहराय के पिता सोढ देव की तिथि वि सं १०२३ से १०६३ तक दी हुई है। भी

---

२७ शोध पत्रिका वर्ष १८ अंक ३ पृ०

२८ रावत सारस्वत—मीणा इतिहास पृ. १११

२९ उपरोक्त पृ १११

जसवीत सिंह मेहुगौत ने यह तिथि विस ११९४ की है। [30]इसकी मान्यता का आधार यह है कि बयासामा के वि सं० १०१४ में सेन के बाद ९ पीढ़ि और हुई थी। अतएव २५ वर्ष प्रत्येक पीढ़ि पर लेते हुये ११९८ ही माना गई है। अगर प्रारम्भिक वंशावली में वर्णित ९ राजाओं के नाम सही हैं तो यह तिथि ठीक हो सकती है। ख्यातों में यह वर्णित किया मिलता है कि दुल्हराय अन्तिम दिनों में दक्षिण की ओर यात्रा के लिये भी गया था। [31] इसकी मृत्यु कहाँ हुई थी यह संदेहास्पद है। ग्वालियर में उस समय कछवाहों की दूसरी शाखा का अधिकार था। अतएव इसका दक्षिण यात्रा आदि बातें मन गढ़न्त प्रतीत होती हैं।

कांकिल

कर्नल टोड इसका जन्म अपने पिता की मृत्यु के बाद मानते हैं जो ठीक प्रतीत नहीं होता है। पृथ्वीराज विजय काव्य के अनुसार कांकिल का जन्म अपने पिता की मृत्यु के पूर्व निश्चित रूप से हो चुका था और यह शास्त्रानुसार वह अपने पिता की उत्तराधिकारी भी हो चुका था।[32] मीणाओं के साथ इसका बड़ा संघर्ष हुआ। आमेर में सूसावत मीणाओं का राज्य था। उस समय वहाँ भत्तो शासक था। कांकिल ने उस पर आक्रमण किया और आमेर जीत लिया और अपनी राजधानी वहाँ[33] स्थिर की। जयपुर राज्य की ख्यात के अनुसार मीणों ने कांकिल के राजगद्दी पर बठते ही उसके राज्य की जमीन दबाली तथा जब बहुत ही अधिक दबाव पड़ने लगा तो उसने भी मीणों पर चढ़ाई की और संघर्ष में वह घायल हो गया। इस पर कछवाहों की इष्ट देवी जमवाय माता ने धेनु का रूप धारण कर अमृत रूपी दूध की वर्षा की जिससे कांकिल की मूर्च्छा हटी और माता ने वरदान दिया जिससे वह आमेर जीतने में सक्षम हो गया। उसने मीणाओं से संधि करके १२ गाव आमेर के आसपास

---

३० जयपुर राज्य का इतिहास पृ ५

३१ ना प्र पत्रिका वर्ष १८ अ क ३ पृ०

३२ उपरोक्त

३३ रावत स रस्वत—मीणा इतिहास पृ १४१

उनके अधिकार में रहने दिया और वहां का कर (टैक्स) आदि वसूल करने का अधिकार भी दे दिया। जयपुर राज्य की वंशावलियों में काकिल का शासन काल बहुत ही अल्पकालीन वर्णित है अर्थात् उसने २ वर्ष और १ महिने ही राज्य किया था अतएव वह इतनी बड़ी विजय कर सका होगा अथवा नहीं इस सम्बन्ध में कुछ विद्वान संदेह भी करते हैं।

बुद्धिविलास की वंशावली और टॉड द्वारा दी गई वंशावली में भी अन्तर है। टॉड ने ढोला के खोह गांव पर अधिकार करने और मांची के मेरा मीणा राव नाटू को मारने का उल्लेख किया है। इसके बाद काकिल को दोनों ने ही शासक माना है। हणदेव और काकिल के बीच मेहल नामक राजा को टाड ने और माना है। इसी प्रकार हणदेव के बाद भी वे कुन्तल नामक एक राजा को और मानते हैं। बुद्धिविलास में जानड़दे और सुजान नामक राजाओं का उल्लेख है। इसमें कुन्तल को बाद में माना है।

काकिल के उत्तराधिकारियों में हणुदेव जानड़दे सुजान और पजनदेव गद्दी[14] पर बैठे ख्यातों में पजनदेव को पृथ्वीराज चौहान का समकालीन वर्णित किया है।[15] वह पृथ्वीराज का सामन्त प्रतीत होता है। कहा जाता है कि उसने तराइन के युद्ध में भी भाग लिया था। इसके बाद क्रमश मालसी, बिजलदेव रामदेव,

---

१४ प्रथम राज काकिल कियो मैंचि मवासे तोरि ।
बचे भोमिया ते सबै मिले आय कर जोरि ॥ ५८ ॥
तिनके पाट हणु नृपति भयो मानों हनुमान ।
बहुरयो जानडदे भए तिनके पाटि सुजान ॥ ५९ ॥
पुनि पज्जवनस भए नृपति महाबली सामंत ।
तिनको बल अरु प्राक्रम बहु कविजन बरनंत ॥ ६० ॥
[बुद्धिविलास]

१५ एनाल्स एंड एंटीक्वीटीज आफ राजस्थान भाग १ २८२। इस ग्रन्थ में पजनदेव की बड़ी प्रशंसा की है। यह वर्णन पृथ्वीराज रासो एवं भाटों की ख्यातों पर आधारित है। इसमें सच्चाई कहां तक है यह कहना कठिन है।

चिन्द्रसेन कुतल जुरसी उदयकरण नरसिंह वणवीर, उद्धरण एव चन्द्रसेन नामक राजाओं ने राज्य किया था। इस राजाओं के विषय में कोई विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता है। उदय करणके बसल बालोजी के पुत्र मोकल हुये। जिसके शेखा जी हुये। शेखावत राजपूत इनके वंशज हैं। उद्धरण महाराणा कुम्भा का समकालिक राजा था और उसका सामन्त भी था। कछावों की ख्यातों में उसका विवाह महाराणा कुम्भा की एक पुत्री रमाबाई से होना वर्णित है।[३६] किन्तु मेवाड़ में अबतक यही मान्यता है कि कुम्भा के एक ही पुत्री थी जिसका विवाह गिरनार के राजा मंडलिक के साथ हुआ। संगीतराज में राजा के परिवार का जहां वर्णन आता है वहां एक ही पुत्री का उल्लेख है। उस समय तक आम्बेर का राज्य अत्यन्त सीमित ही था। रणथमोर, बयाना चाकसोट चाटसू आदि का भूभाग कभी मसलमानों की जागीर में था तो कभी मेवाड़ वालों के राज्य में। ग्वालियर का राजा डूंगर सिंह तोमर भी अत्यन्त बलशाली था। टोंक के आसपास तक एक बार इसने आक्रमण कर वि० सं० १५१० के समभव जीत लिया था किन्तु कुम्भा ने इसे वापस हटा दिया। मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी ने भी कई बार ढूंढाड़ और रणथंमोर पर आक्रमण किया था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के अनुसार महाराणा कुंभा ने भी आम्बेर जीता था।[३७] कुंभा के इस विजय का उद्देश्य राज्य विस्तार करना ही रहा प्रतीत होता। नवाममखारासो से यह भी पता चलता है कि कायमखानियों ने आम्बेर जीत कर वहां के मोमियों को भगा दिया था।[३८] समभवत महाराणा कुंभा ने कायमखानियों से आम्बेर लेकर वापस उद्धरण को दिलाया हो। टोडा में भी उसने ऐसा ही किया था। वहां के शासक सोढदेव को मुसलमानों ने हटा दिया था जिसे कुंभा ने वापस प्रतिष्ठापित किया था।

---

३६ हनुमान शर्मा—नाथावतों का इतिहास, पृ १२।

३७ महाराणा कुंभा पृ ६६

३८ उपरोक्त पृ १००

आम्बेर के १५ वीं और १६ वीं शताब्दी के शासकों के सबसे प्रबल प्रतिद्वन्दी टोडा के सोलंकी रहे प्रतीत होते हैं। चाटसू तक इनके राज्य का भूभाग रहा था। उस समय पूर्वी राजस्थान की स्थिति बड़ी विषम थी। सारा ढूंढाड़ प्रदेश मुसलमानों के निरन्तर आक्रमणों से परेशान था। कुंभा भी इस क्षेत्र को मुसलमानों से पूर्ण मुक्त नहीं किया सका। टोंक नरेना मौजमाबाद, बयाना आदि से कुंभा के शासन काल के अन्तिम दिनों की कई प्रशस्तियां मिली हैं जिनमें वहां के शासकों के नाम कुंभा के स्थान पर मुसलमानों के अंकित हैं।

महाराणा सांगा के समय आम्बेर में पृथ्वीराज कछावा का उल्लेख मिलता है।[१९] पृथ्वीराज ने कछावों की १२ कोटरियें स्थापित की थी। इनके दो पुत्र पूरणमल और भीमदेव में गृहयुद्ध हुआ। भीमदेव के बाद उसका लड़का रत्नसिंह कुछ समय पश्चात शेरशाह के पास चला गया और इसकी सहायता से उसने आमेर राज्य हस्तगत कर लिया। इसे भी उसके छोटे भाई आसकरण ने हटा दिया। जिसने केवल १५ दिन ही राज्य किया था। आसकरण का भारमल ने हटा दिया एवं वि० सं० १६०१—४ में वह स्वयं शासक बन गया।

इस प्रकार महाराणा सांगा के शासन काल से ही आम्बेर के इतिहास में बड़ी उथल-पुथल आई प्रतीत होती है। सोलंकियों की एक शाखा के 'रामचन्द्र के आधीन चाटसू और इसका भूभाग रहा था।

---

१९. पृथ्वीराज कछावा की एक ही प्रशस्ति अब तक मिली है जो इस प्रकार है। यह बधीचन्दजी के दिगम्बर जैन मंदिर जयपुर में संग्रहित ज्ञानार्णव नामक ग्रन्थ की है। इसकी वे० सं० २५ है —
संवत १५८१ वर्षे फाल्गुन सुदि १ बुधवासरदिने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनंदि देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री-श्री शुभचन्द्रदेवास्तत् पट्टे शिष्य भट्टारक श्री जिनचंद्रदेवस्तत्पट्टे सकल विद्यानिधान ध्यानाध्ययन ध्यान तत्पर सकल मुनिजनमध्य लब्धप्रतिष्ठ भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव। आमेरगढ़स्थानात्। कूरमवंशे महाराजाधिराज पृथ्वीराज राज्ये…" (आमेर शास्त्र भण्डार के सौजन्य से प्राप्त)

यह महाराणा सांगा का सामन्त था। इसने अपनी प्रशस्तियों में सांगा का नाम बड़े गौरव से लिखाया है। पृथ्वीराज कछावा के साथ भी सांगा के बड़े अच्छे सम्बन्ध रहे प्रतीत होते हैं। यह सांगा का दामाद था। इसने ही सांगा को खानवा के युद्ध से घायल स्थिति में उठाने में सहायता की थी।

भारमल्ल

इस शाखा का सबसे पहला उल्लेखनीय शासक भारमल्ल था इसके शासन काल की लिखित कई ग्रन्थ प्रशस्तियां मिली हैं।[40] इसने ६ फरवरी सन् १५६२ ई० (सं १६१६) में अपनी पुत्री जोधाबाई का विवाह अकबर के साथ करके कछावा इतिहास में एक

---

४० राजा भारमल के समय की कई प्रशस्तियां मिली हैं। उदाहरणार्थ पाटोदी जैन मंदिर के ग्रन्थ स० २३६ की पुराणसार की वि०सं० १६०६ आषाढसुदि ११, की छोटा दीवानजी जयपुर के मंदिर के ग्रन्थ यशोधरचरित्र की प्रशस्ति (वे० सं० २८८) वि स १६१ भादवा सुदी की एवं आमेर शास्त्र भण्डार की शोध मिली कुछ प्रशस्तियां उल्लेखनीय हैं --

(१) जिनदत्त चरित्र ग्रन्थ की वि स १६११ चैत्र सुदि ११ की प्रशस्ति (प्रतिलिपि स) 'संवत् १६११ चैत्रसुदि ११ सोमवासरे श्रवणनक्षत्रे सिद्धिनामयोगे आम्बावतीमहादुर्गे श्री नेमीश्वरचैत्यालये राजा श्री भारमल राज्य प्रवर्तमाने ....

(२) पाण्डवपुराण ग्रन्थ की प्रशस्ति प्रतिलिपि संवत १६१६ 'संवत् १६१६ वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे चतुर्दशीतिथौ बुधवासरे धनिष्ठानक्षत्रे आमेरमहादुर्गे श्री नेमीनाथजिन चैत्यालये राजाधिराज भारमल राज्य प्रवर्तमाने श्री मूलसंघे..........

(३) हरिवंशपुराण की प्रशस्ति वि० सं० १६१६ (प्रतिलिपि संवत) संवत १६१६ वर्षे आश्विनमासे प्रतिपत्तिथौ शुक्रवासरे मघाभिधानक्षत्रे शुभनामयोगे आंबेरिमहादुर्गे श्री राजाधिराज भारमल राज्य प्रवर्तमाने..........

[प्रशस्ति संग्रह के पृ० १०४ १२६ एवं ७० क्रमशः द्रष्टव्य हैं।]

नये युग का सूत्रपात किया। यह बहुत दूरदर्शी था। मेवाड़ की बहादुर शाह के साथ निरन्तर लड़ते रहने से शक्ति कमजोर होते देखकर उससे सहायता की अधिक आशा उसे नहीं रही थी। टॉड के अनुसार भारमल को मीणों का भय बहुत अधिक था। किन्तु स्थिति इससे भिन्न थी। वि० सं० १६१५ में भारमल के बड़े भाई पूर्णमल का पुत्र सूजा मेवात के सरदार मिर्जा सर्फुद्दीन की सहायता से आम्बेर पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगा। उसने वि० सं० १६१८ में आमेर पर अधिकार भी कुछ समय के लिए कर लिया। भारमल वहां से भाग खड़ा हुआ। सफुद्दीन से मुक्ति पाने के लिये उसने अकबर के साथ संधि की थी।

भारमल की मीणाओं के साथ कई लड़ाइयां हुई थी। उसने महाराण के मीणार क्य को नष्ट किया था जो संभवतः इस समय एक उल्लेख नीय राज्य रहा होगा।

इस प्रकार घोला या दुर्लभराय से लेकर भारमल तक के राजाओं को मीणों से बराबर थोड़ा बहुत संघर्ष करना पड़ा और धीरे-धीरे उन्होंने यहां के स्थानीय मीणा शासकों को हटा कर उनके राज्य पर कब्जा कर लिया।

प्राचीन राजस्थान में पंचकुलों की व्यवस्था | १०

प्राचीन भारत में राज्यों को शासनतंत्र सुचारु रूप से चलाने के लिये कई संस्थायें विद्यमान थीं। इनमें पंचकुल सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसके सम्बन्ध में शिलालेखों और प्राचीन साहित्य में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

ग्राम और महाजन सभा

प्रायः सब ही मुख्य-मुख्य नगरों में एक महाजन सभा[1] होती थी। ७वीं शताब्दी से राजस्थान में इसकी शक्ति बढ़ती गई इसे कहीं-कहीं तो कर लगाने का अधिकार प्राप्त था और कहीं राजा की स्वीकृति लेकर यह कर लगाती थी। वि० सं० ७०३ के मेवाड़ के शीलादित्य के लेख से प्रकट होता है कि श्रेष्ठि जेंतक ने देवी का मंदिर बनाने के पूर्व इस सभा से स्वीकृति प्राप्त[2] की थी। वि० सं० १२०० के रायपाल[3] और ११५२ के[4] जूना के लेख में वर्णित किया गया है कि

---

१ अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० १०१।

२ 'पश्चिमु सौर्यत तथ वम [वों] तकभाहतर' मी आरण्यवासिन्या देवकुलं चक्र महाजनाविष्ट—— — —' नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ अंक ३ पृ० ३३१-३३४ पंक्ति ८-९।
अम्बेयस वर्ष १ भाग २।

३ मूल शिलालेख का कुछ अंश इस प्रकार है—
(१) ई० । संवत् १२०० कार्तिक वदि ७ रवौ महाराजाधिराज श्री रायपालदेव राज्ये श्री न—
(२) ड्डूलडागीकाया रा राजदेव ठकुराणां श्री महाजन (न) म महाजने (नै) सर्वैर्मिलित्वा श्री
(५) ———— एतत् महाजनेन वैतरेण बनाव प्रदत्त ॥
इसी के एक अन्य लेख में "महाजन ग्रामीण। जनपदसमस्ताय वर्षीय निमित्त विशोपकोपार्जितद्रव्यं दत्त" [रायपाल का लेख वि० सं० १२००]

४ "अहो मागा महाजनेन मानिता" [वि० सं० ११५२ के बाड़मेर (जूना) के सामन्तसिंह के लेख की अंतिम पंक्ति]।

राजा कर लगाने के पूर्व इस संस्था की स्वीकृति लेता था। वि. सं० ११७२ के सेवाड़ी (गोडवाड़) के लेख से प्रतीत होता है कि सेना धिकारी भी महाजन सभा का सम्मान करता[5] था। इस लेख में यशो देव के लिये यह बात बहुत ही गौरव के साथ लिखी गई है कि वह राजा और महाजनसभा द्वारा सम्मानित था।

ग्रामों की सभा को ग्राम सभा कहते थे।[6] इसको भी कई प्रकार के अधिकार प्राप्त थे।

पंचकुलों का गठन

ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त संस्थायें ग्राम की सार्वजनिक संस्थाओं की तरह थी जिनमें सब ही लोग भाग ले सकते थे। इसका सीमित रूप पंचकुल[7] था। इसमें गांव के सब नागरिक सदस्य नहीं हो सकते थे। सोमदेव कृत नीतिवाक्यामृत की टीका में 'करण' शब्द को पंचकुल का परिचायक बतलाकर इसमें ५ सदस्य माने हैं-(१) आदायक (२) निबन्धक (३) प्रतिबन्धक (४) विनिग्राहक और (५) राजाध्यक्ष।[8]

मध्यकालीन शिलालेखों में राजाओं के महामात्यों[9] के साथ 'पंचकुल प्रतिपत्ती' लिखा मिलता है जिसका अर्थ कुछ विद्वान ऐसा लेते हैं कि जिन पंचकुलों में राज्य का मुख्यामात्य सदस्य होता था वे केन्द्रीय सरकार के अधिकार में थे और जिनमें यह सदस्य नहीं होता

---

५ दतषचासीत् विशुद्धात्मा यशोदेवबलाधिप ।
राज्ञो महाजनस्यापि सभायामग्रणी स्थित । ७॥ [वि स ११७२ का सेवाड़ी का लेख]।

६ अर्ली चोहान डाइनेस्टीज पृ २०१। लेखपद्धति पृ १६।

७ वही पृ २०४।

८ पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नादर्न इंडिया फ्रौम जैन सोर्सेज प १९२। मेरी पुस्तक-महाराणा कुंभा, पृ० १७६।

९ संवत १३१० वर्षे सार्वपूर्णिमायामद्येह महाराजाधिराज श्री विसलदेव कल्याण विजयराज्ये। तत्पादपद्मोपजीविनि महामात्य श्री नागड प्रभृति पञ्चकुलेन प्रतिपत्ती"...."(द्वितीयवेद नामक ग्रन्थ (जैसलमेर भण्डार में संगृहीत) की प्रशस्ति)।

था के साधारण[10] थे। मध्यकालीन अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि यह बात निश्चित रूप से सही नहीं थी। वि० सं० १११५ और १३४५ के दो लेख हठ्ठूंडी (गोडवाड़) में प्राप्त हुये हैं। दोनों में पंचकुलों[11] का उल्लेख है। एक में तो मुख्यामात्य का उल्लेख है और दूसरे में नहीं। अतएव प्रतीत होता है कि उक्त सिद्धान्त गलत है। केवल उक्त पांच सदस्यों में राज्याध्यक्ष या राजा द्वारा मनोनीत व्यक्ति भी सदस्य होता था। अतएव मुख्यामात्य भी करणाधिकारी और साथ ही साथ पंचकुलों का भी सदस्य था। यह आवश्यक नहीं था कि वह इनकी बैठकों में भाग ले। महापंचकुलिक संभवतः अध्यक्ष होता था।

इन पंचकुलों पर राजा का आंशिक या पूर्ण अधिकार होता था। भीनमाल के वि० सं० १३०६ और १३३६ के लेखों से विदित होता है कि राजा ही इनके सदस्यों की नियुक्ति करता था। समराइच्चकहा में धंदन सार्थवाह के घर चोरी हो जाने के प्रसंग में राजा द्वारा ही पंचकुल की नियुक्ति का उल्लेख है। इसी प्रकार मोहपराजय नाटक में कुमारपाल द्वारा पंचकुल के नियुक्त करने का उल्लेख है।[12]

---

१० चालुक्याज आफ गुजरात पृ २३६-२३८।

११ वि सं १११५ के हठ्ठूंडी के लेख में —

संवत १११५ वर्षे फाल्गुण वदि १ सोमेऽद्येह समीपाटी। मण्ड पिकायां श्री पाटहडमोडा (?) पंचरा मह सज्जन प० मह श्रीसा उमगपसिंह प० ठ० देवसिंह प्रमति पंचकुलेन' वर्णित है। इसमें ५ सदस्यों के नाम ही वर्णित हैं। इसके विपरीत वि० स० १३४५ के माताजी के मंदिर (हठ्ठूंडी) के लेख में इस प्रकार वर्णन है— 'संवट १३४५ वर्षे प्रथम भाद्रवा वदि १ गुरुदिने अद्येह श्री नाडुल मण्डले महाराजकुल श्री सामंतसिंह देव राज्ये तन्नियुक्त श्री श्रीकरणे श्री करणादि पंचकुल प्रभृति भूमि असरालि पंथा .... आदि वर्णित है। इसमें मुख्य मंत्री के साथ पंचकुल सब उल्लेखित है।

१२ मोहपराजय तीसरा पृ० ५७। इसमें देव। नियुक्त पञ्चकुल मेन तनु समर्स पहनियोगिन' कुबेरस्वामी सबस्य सपनपति" वर्णित है। यह कुमारपाल के समक्ष आकर एक वणिक कहता है।

पंचकुलों की कार्य प्रणाली

समराइच्च कहा जो ८ वीं शताब्दी की रचना है इस पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। इसके चौथे भव में कथा दी हुई है। जब राजा चण्डसेन के सर्वसार खजाने में चोरी हो गई तो बड़ी तलाश की जाने लगी, किन्तु कोई सुराग नहीं मिला तब नवागन्तुकों की भी तलाशी की जाने लगी। एक बार कुछ लोगों को माल सहित पकड़ लिया गया तो उन्हें पंचकुल के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। तब इसके सदस्यों ने कई प्रश्न किये, जो उल्लेखनीय हैं —

'नीया पंचउल समीवं पुच्छिया पंचउलि एहि–
'कओ तुम्भे त्ति।
तेहि भणियं 'सावत्थी ओ
करणि ऐहि भणियं "कहि गमिसह त्ति ?'
तेहि भणियं 'सुसम्मनयर'
करणि एहि भणियं 'कि निमित्त त्ति ?'
तेहि भणियं नरवइ समाए सामो एस सत्थवाहपुत्त मेच्छिउ त्ति?'
करणि एहि भणियं "तुम्हाणं किञ्चिदविणु जायं ?'
तेहि भणियं "अत्थि'
करणि एहि भणियं 'कि तयं त्ति ?
तेहि भणियं " इमस्स सत्थवाहपुत्तस्स नरवइ विइण्ण रायासंक रयणं त्ति

अर्थात पंचकुल के पास ले जाते ही सदस्यों ने पूछा कि तुम लोग कहां से आये हो तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग श्रावस्ती से आये हैं। कहां जाओगे ? उन्होंने पूछा। उत्तर दिया कि सुधर्मनगर को जायेंगे। वहां क्या काम है ? सदस्यों ने प्रश्न किया। उत्तर दिया कि वहां राजा की आज्ञानुसार इस सार्थवाह के पुत्र को ले जाना है। 'तुम्हारे पास कुछ धन है ?" इस पर उत्तर दिया गया कि हां है। आदि आदि

चंदन सार्थवाह के घर पर चोरी हो जाने का प्रसंग भी उल्लेखनीय है। इस में डुंडी पिटवाकर सब को सूचना दिलाई गई। इस के पश्चात पंचकुल को राजा ने नियुक्त किया। इसमें नगर के प्रधान सदस्य थे

(पहाणा नयररक्खणाहिं द्विया कारणिया)। इन्होंने आधुनिक पुलिस की तरह पूरी जाँच की और चोरी गये सामान की सूची से सामान मिलाया और कई प्रश्न किये। कुछ अंश इस प्रकार हैं –

पुच्छिओ य तेहिं अहं। सत्थवाहपुत्त न ते किंचि केणइ एवं जाइय रित्थं सववहारववियाए ववणीयं ति। तओ मए मएंजाव संकिलए भणियं। नहिं नहिं'' ति। तेहिं भणियं। न तए कुप्पियव्वं राय सासणमिणं च ते गेहमवलोइयव्वं ति। मए भणियं। न एत्थ अवसरो कोवस्स पया परिरक्खणा निमित्तो समारम्भो देवस्स। तओ पविट्ठा मे गेहं सह मम। दुइ हिं रायपुरिसा। अवलोइयं च तेहिं नाणापयारं ववियमावं विकृठ च पयतट्ठावियं चन्दणनामकं हिरण्णाभरणं नीणियं चाहिं वहिय चन्दण भण्डारियस्स। अवलोइऊण लद्धुक्कापिय भणियं च तेण। अणुहरइ ताव एयं। न उण निस्संसयं वियाणामि त्ति। कारणहिं भणिय वाएहि अवहरियनिवेणापत्तणं (अपहृत निवेदनापत्रकं) कि तत्थ इमं ईइसं अभिलिहियं न व त्ति। वाइयं पत्तयं विट्ठमभिलिहियं। लज्जसी भूया नायरकारणिया भणियं च तेहिं। सत्थवाह पुत्त कुओ तुह इमो-विभिच्छिऊण भणिय मए नियगंचेव एयं' ति। तेहिं भणियं ''कह चवण नामक्खियं। मए भणिय न नाणामो कहिं च वासर परावत्तो भविस्सइ'। तेहिं भणियं 'कि सोवियं कि वा हिरण्णजायमेत्य ति'' आदि-आदि। (दूसरा भव–समराइच्चकहा)

सपादलक्ष के राजा द्वारा गुजरात पर आक्रमण करने पर गुजरात ने पंचकुल को बुला कर सैनिक सहायता चाही थी।[13]

कई बार पंचकुल को सदस्य मंदिरों की व्यवस्था भी करते थे। सोमनाथ के मंदिर की व्यवस्था कुमारपाल ने पंचकुल को सम्भलाई थी। राजस्थान में भी ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। ऐसे सदस्य गोष्ठिक कहलाते थे। वि. सं. १११२ के देवाड़ी के लेख के अनुसार गोष्ठिकों को मन्दिरों की व्यवस्था सौंपी गई थी।[14] गुरुत कथा कोष

१३ चालुक्याज आफ गुजरात प २४१। प्रबन्ध चिन्तामणि पृ २६।
१४ चालुक्याज आफ गुजरात पृ ५४१। अरली चौहान डायनेस्टीज प २ ४ २०५। प्रबन्धचिन्तामणि पृ १२६-१२८। देवाड़ी के

(कथा १२१ श्लोक २६–२७) में भी चोरी हो जाने पर पंचकुल के समक्ष न्याय के लिए उपस्थित होने का प्रसंग आता है। मोह पराजय का वर्णन भी उल्लेखनीय है। इस में लिखा है कि कुबेरस्वामी नामक श्रेष्ठि के निस्संतान मर जानेपर एक वणिक कुमारपाल के समक्ष उपस्थित होता है और निवेदन करता है कि हे राजन् आप पंचकुल को नियुक्त कीजिए, जो जाकर कुबेर स्वामी के धन पर अधिकार कर लेवे। लेखपद्धति में आपसी झगड़ों के निपटारे के साथ-साथ खेतो के बटवारे आदि में भी इसका सक्रिय भाग लेना उल्लिखित है [15] इसके अन्तर्गत भाटक संस्था होती थी जो भाड़े की देखभाल करती थी। वि॰ सं॰ ११८ के बटियाला के लेख में इसका उल्लेख है। इसी प्रकार का वर्णन रतनपुर के वि॰ स॰ ११४८ के लेख में भी।

इन कार्यों के अतिरिक्त पंचकुलों द्वारा शुल्क[16] या कर संग्रह करने की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। संग्रह का कार्य तो वस्तुतः मंडपिकाओं द्वारा ही होता था। प्रबन्धचिन्तामणि में इस सम्बन्ध में कई सदर्भ हैं। कान्यकुब्ज से कर संग्रह के लिए एक पंचकुल की नियुक्ति करना वर्णित है। धार्मिक कर संग्रह की व्यवस्था भी इसके द्वारा करने का उल्लेख मिलता है। पंचकुल के सदस्य मंडपिका आय में से कुछ राशि दान के रूप में दे सकते थे। उदाहरणार्थ वि सं ११६५ का हट्टूंडी का लेख है[17] इसमें प्रत्या वर्षं वर्षं सभी मंडपिका पंचकुलेन दातव्या : पालनीयश्च वर्णित है। इसी प्रकार वि॰ सं॰ ११११ के इसी लेख के अ ह में भी ऐसा ही उल्लेख है।

लेख में 'गोष्ठ्या मिलित्वा निषेधकृत' वर्णित है। (नाहर जैनलेख संग्रह भाग १ पृ २२७)। सांडेराव के वि स १२२१ कार्तिक वदि २ के लेख में भी इसी प्रकार का उल्लेख है"

१५ लेखपद्धति (गायकवाड सिरीज) पृ ८, ९, ११ और १४ द्रष्टव्य हैं।

१६ मेरी पुस्तक महाराणा कुम्भा, पृ २७१।

१७ प्राचीन जैन लेख संग्रह, ले स ३११।

जिनके ओष्ठों पर उनके पतियों के दन्ताघात अब भी बने हुए थे। मौख ने युद्ध में शत्रुहस्ती का मस्तक विदीर्ण किया था। मान इसका पुत्र था। श्री रत्नचन्द्रजी अग्रवाल ने हाल ही में चित्तौड़ से एक और लेख प्रकाशित[3] कराया है। इसमें भी राजा मान मग का उल्लेख है जिसे "यदुपति आदि" का वर्णित किया है।

इन मौर्यों का समय बड़ा संघर्षमय रहा है। ५ वीं शताब्दी के आस-पास से ही चित्तौड़ और इसके आस-पास का क्षेत्र मालवा के शासकों से प्रभावित था। छोटी सादड़ी के वि सं ५४७ माघ सुदि १० के एक लेख में गोरी[4] वंशी शासकों का उल्लेख है। ये संभवतः मन्दसौर के औलिकरों के आधीन थे। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् की विषम स्थिति का लाभ उठाकर ये औलिकर मेवाड़ के दक्षिणी भाग तक फैल गये थे। इनमें आदित्यवर्द्धन (वि स ५४०) द्रव्यवर्द्धन (५६१ वि०) यशोवर्द्धन (५८६ वि०) आदि[5] शासक हुये थे। इनमें यशोधर्मा बड़ा प्रतापी था। इसने स्वेच्छा से गुप्त सम्राट का नाम भी अपने लेख से हटा दिया था। इसकी ओर से अभयदत्त पश्चिमी प्रान्तों का प्रशासक था। हाल ही में प्राप्त छठी शताब्दी के एक लेख में वराह के पौत्र और विष्णुदत्त के पुत्र का

३—राजस्थान भारती में हाल ही में यह प्रकाशित हुआ है। इसमें इसके द्वारा ऊँचे मन्दिर वापी प्रपा आदि बनाने का उल्लेख है
श्रीमानमंगपुरः। यदुपति आदिरासीत्मु—
पश्चाद् दुरितसमपरो न हिर्णमथितो यश प—
सि स्तुतावेवं यस्य विमलशय प्रकटेयं त्यर्जद्ध ग्र—
बद्धक किया जितो विम तः। मैनासावालयवसो मय—
स्य वारित बलाकस्य प्रपा शीतल माप्या कस्य —
मस्या-भिपृप्वा कीर्तिपु भाविकीर्तन सत्यमतकी—

४—एपिग्राफिया इंडिका Vol XXX जनवरी १९५३ पृ० १२२

५—इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली Vol XXXIII No ४ दिसम्बर १९५७ पृ० ३११ और आगे चित्तौड़ ई...

उल्लेख है जो दशपुर और माध्यमिका का प्रशासक[5A] था। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार वराह[6] के पुत्र और विष्णुदत्त के उल्लेखित पुत्र को पहले प्रशासक का पद मिला था और इसके पश्चात् ममयदत्त को। दोनों एक ही परिवार से सम्बन्धित थे। इनके राज्य को मेरों के सामूहिक आक्रमण से बड़ी क्षति पहुंची। मेद लोग मेवाड़ में फैल गये और इनके दीर्घ काल तक यहां निवास करने के कारण इस प्रदेश का नाम भी मेवाड़ पड़ा था। मौर्यों ने इसी संधि काल में मालवा के कुछ भाग दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया।

'समराइच्च कहा' का एक प्रसंग

समराइच्च कहा के लेखक हरिभद्र सूरि थे। ये चित्तौड़ के रहने वाले थे। इन्होंने धूर्ताख्यान की पुष्पिका में स्पष्टतः उक्त ग्रन्थ को चित्तौड़ में[7] पूर्ण करना वर्णित किया है। प्रभावक चरित के अनुसार ये ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे और राजा जितारि के पुरोहित थे। जितारि किस का नाम था यह स्पष्ट नहीं है। यह उपनाम प्रतीत होता है।

प्राकृत की कथा समराइच्च कहा' के एक प्रसंग में राजा मान भग के वर्धमानपुर के आसपास के भाग को जोतने का उल्लेख है। प्रसंग इस प्रकार है कि राजा गुणसेन अग्निशर्मा नामक साधु को भोजन के लिए आमन्त्रित करता है। यह साधु एक मास का उपवास करता है एवं पारण के दिन जिस घर में पहले प्रवेश के समय जो भी अन्न मिल जावे उस तक ही सीमित रहने का प्रण किया हुआ था। वह

---

५ A—इपिग्राफिका इंडिका Vol XXXIV Part II पृ० ५५–५७

६—रिसर्चर वर्ष ५ ६ पृ० ७–८

७—चित्तउडदुग्गसिरिसंठिएहिं सम्मत्तरायरत्तेहिं।
सुचरिअसमूहसहिआ कहिआ एसा कहा सुबरा ॥१२३॥
सम्मत्तसुद्धिहेउं चरिअं हरिभद्दसूरिणा रइअं।
णिसुणंतकहंताणं भवविरहं कुणउ भव्वाणं ॥१२४॥
धूर्ताख्यान (पृ० १२)

गजा शिलादि ने किया था। जैन प्रबन्धों में जसाकि ऊपर उल्लेखित है हरिभद्र सूरि को इस राजा का पुरोहित वणित किया गया है। ये दोनों प्रसग स्वेच्छा से लेखक ने जोड़े हैं। मूल कथा से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

हरिभद्र सूरि मान मोरी के समसामयिक लेखक थ और चित्तौड़ के रहने वाले थे। यद्यपि इनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध में मतवमता नहीं है किन्तु अब[10] सब लेखक इन्हें वि० स० ७५७ से ८२७ के मध्य हुआ मानते हैं। मेरुतुंग ने विचार श्रेणी में इनका निधन काल वि० सं० ५८५ बताया है। कुवलयमाला के कर्ता ने वि० सं० ८३५ में अपना ग्र थ पूर्ण किया था। इसमें हरिभद्र सूरि का उल्लेख किया है। सिद्धर्षि ने वि० सं० ९६२ में 'उपमिति भव प्रपच कथा' की प्रशस्ति में हरिभद्र सूरि को अपना धर्म बोध गुरु कहा है और यह भी लिखा है कि मानों ललित विस्तरा ग्र थ उसके लिये ही लिखा था। सिद्धर्षि के इस प्रकार उल्लेख कर देने से समय निर्धारण में कुछ असंगति प्रतीत होती है। इसे जिनविजयजी ने अपने निबन्ध हरिभद्र सूरि का समय निर्णय में अधिक स्पष्ट किया है। इन्होने कई प्रमाणो से हरिभद्र सूरि को वि० सं० ७५७ से ८२७ के मध्य हुआ माना है। मान मोरी के शिलालेख वि० सं ७७ के प्राप्त हुये है। अतएव इसका समराइच्च कहा का प्रसंग भी ऐतिहासिक माना जा सकता है। मेवाड़ की ख्यातों में भी मान मोरी को कई प्रदेशों को जीतने वाला लिखा है। ये ख्यातें

१०– हरिभद्र सूरि क काल निर्णय के सम्बन्ध में निम्नांकित सामग्री पठनीय है.–

पूना ओरियन्टल कान्फ्रेंस और जन साहित्य संशोधक भाग १ अ क १ में प्रकाशित जिनविजयजी का निबन्ध/श्री कल्याण विजय जी–धर्म संग्रहणी की भूमिका/एच जैकब–समराइच्चकहा (Bib-In 1926) की भूमिका/उपमितिभव प्रपंच कथा (B. I) की भूमिका/कि श्री मर्मकर जी 'विशतिविशिका' की भूमिका/ भद्र स्वर की कथावली (यथावधि अमुद्रित)/प्रभावक चरित राजशेखर का प्रबन्ध आदि आदि

बहुत बाद की है और ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्व नगण्य सा है। फिर भी परम्परा से चली आई धारणा की अवश्य पुष्टि होती है कि मान मोरी एक प्रबल शासक था। समराइच्च कहा के उक्त प्रसंग में जिस प्रकार सैनिक तयारी का वर्णन किया गया है, इससे भी इसकी पुष्टि होती है।

गुहिल राजाओं से संघर्ष

मान मोरी का बाप्पारावल के साथ युद्ध करना और उससे चित्तौड़ लेना प्रायः वर्णित किया है। बाप्पारावल की तिथि वि सं ८१० भी ओझाजी ने मानी है। यह एक लिंग माहात्म्य [11A] नामक ग्रन्थ के आधार पर स्थिर की है जो महाराणा कुंभा के समय संकलित किया गया था। बाप्पारावल की तिथि के सम्बन्ध में १३ वीं शताब्दी से ही मेवाड़ के राजकीय शिलालेखों में भ्रांति मिलती है। राणकपुर के लेख में भी उसे गुहिल का पिता मान लिया है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में जो कई प्रशस्तियों को देखकर के अत्यन्त शोध पूर्वक बनाई गई थी बाप्पा के समय निर्धारण में भूल की है। चित्तौड़ से वि सं० ८११ का एक अभिलेख [11B] कुकड़ेश्वर का कर्नल टॉड को मिला था जो अब प्राप्य नहीं है। अब वि सं ८११ में चित्तौड़ में राजा कुकड़ेश्वर शासक था

११–A आकाशचंद्रदिग्गजसंख्ये संवत्सरो बभूवात्र
श्री एकलिंगशङ्करलब्धवरो बप्पभूपालः
एकलिंग माहात्म्य (हस्त० १४७७ सरस्वती भवन उदयपुर)
एक अन्य प्रति मे जो अपेक्षाकृत बाद की रचना है उक्त तिथि में बाप्पारावल का राज्य छोड़ना वर्णित किया है।
राज्यं दत्वा स्वपुत्राय आश्रयणमुपागते।
खचंद्र दिग्गजाख्ये च वर्षे नागह्रदे मुने ॥ २/२१ ॥
(उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ से उद्धृत)

११B– आर्किओलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इंडिया सन् १८७२–७३
पृ० ११३ एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान Vol. I

तब किस प्रकार बाप्पारावल वहां शासक हो सकता है ? यह विचार णीय है। बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में ओझाजी के अनुसार एक गुटका सग्रहित है, जिसमें बाप्पारावल[12]की तिथि वि० स ८२० दी है। मेवाड़ के गुहिल राजाओं में जब तक बाप्पारावल की तिथि निश्चित नही होती है तब तक मान मोरी के मध्य उसके संघर्ष की कथा पर विचार करना[13] संभावित नहीं हो सकता। मान मोरी (७७० वि०) और बाप्पारावल के मध्य एक राजा और होना चाहिए। इस में कोटा के कन्सवा के लेख वि० स० ७६५ में वर्णित धवल अथवा कुकड़ेश्वर को रखा जा सकता है। धवल के लिये लेख में भूपेषु मुख्यस्तु सकलां महीम् वर्णित किया गया है एव वह मौर्य वंशी भी था। इस सम्बन्ध में और खोज की आवश्यकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अरब आक्रमण कारी जुनैद के आक्रमण से मौर्यों को बड़ी क्षति पहुंची और इसी के फलस्वरूप बाप्पा ने शक्ति एकत्रित की हो।

निर्माण कार्य

मोर्यों द्वारा चित्तौड़ और इसके आसपास कराया गया निर्माण कार्य उल्लेखनीय है। ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कि चित्तौड़ दुर्ग को प्रथम बार सामरिक महत्व का इन मौर्यों ने बनाया था। चित्रांग द्वारा और भी कई तालाब बनाने का यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। मान मोरी के वि० ७७० के टॉड द्वारा प्रकाशित लेख में मानसरोवर के निर्माण का उल्लेख[14A] है। इस तालाब के सिवाय और भी कई एक बारीकृत गगन चुम्बी प्रासाद बनाने का उल्लेख धाकरकुण्डा के वि० सं

१२— बापामिध समभवत् वसुधाधिपोसौ।
पञ्चाष्टपद् परमितेष स (ष) केष्वतीतेषु (के)
उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० १०८
१३— तत स निजित्य नृपं तु मोरी जातीय भूपमनुराज संज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रितचित्रकूटं चक्रे च राज चक्रवर्ती ॥ १८ ॥
राजप्रशस्ति सर्ग ३
(१४A) एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान Vol. I, पृष्ठ 652.

७३० के लेख में है। श्री रामवल्लभ जी सोमानी की मान्यता है कि चित्तौड़ का सूर्य मंदिर भी इस मान मोरी ने ही बनाया[१४B] था। यह राजस्थान की पूर्व मध्ययुगीन स्थापत्यकला की अनुपम निधि है। इस प्रकार राजा मान मोरी एक प्रबल शासक रहा होगा।

राजा मान मोरी और बाप्पारावल के संघर्ष के सम्बन्ध में और खोज किया जाय तो पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास को नई सामग्री प्राप्त हो सकती है। इसी समय प्रतिहार राजा शक्ति बढ़ाने जा रहे थे और कुछ ही समय पश्चात् शक सं० ७०५ (वि० ८४०) में इन्होंने उज्जैन का द भाग जीत लिया था

क्या गुहिल शासक ने प्रतिहारों की सहायता से चित्तौड़ जीता था? इस सम्बन्ध में कोई निश्चय सामग्री उपलब्ध नहीं है। मौर्यों के साथ प्रतिहारों का संघर्ष सम्भावित है। इसी समय सिंध पर अरबों का आक्रमण हुआ था। श्री पृथ्वीसिंह मेहता के[१५] अनुसार दाहिर के बेटों ने संभवतः चित्तौड़ के मौर्यों की मदद से अरबों को सिंध के एक बड़े भाग से निकाल दिया था। इन संघर्षों के कारण मौर्यों की शक्ति संभवतः कमजोर हो गई हो और गुहिल शासकों ने इस का लाभ उठा कर चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया था।

इस समय में चित्तौड़ में विशाल साहित्य का सर्जन हुआ था जिसका उल्लेख मैंने 'वीरभूमि चित्तौड़' में विस्तार से कर दिया है। विषय की स्पष्टता हेतु मान मोरी का वंश क्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:—

चित्रांगद मोरी [डी० सी० सरकार ने इसे मथुरा शाखा के मौर्यों से सम्बन्धित माना है जो गलत प्रतीत होता है।]
|
महेश्वर
|
भीम [झालरापाटन का दुर्गमय इसका सामन्त रहा प्रतीत

१४B— वरदा वर्ष ९ अंक ४ पृ० ७

१५— हमारा राजस्थान पृ० ५५

होता है।]

|

भोज [इन्द्रगढ़ के लेख में वर्णित नन्न राठौड़ था इसके पिता ने इसे मालवा से निष्कासित कर दिया था।]

मान [वि० सं० ७००]

|

भवक [वि० सं० ७६५ श्री डी० सी० सरकार ने इसे मथुरा शाखा से सम्बन्धित माना है जिसकी कोई पुष्टि नहीं होती है।]

|

कुक्कसस्वर (वि० सं० ८११)

[वरदा वर्ष १० अंक २ में प्रकाशित]

८ वीं शताब्दी में विवाह-समारोह | १२

विवाह एक मांगलिक पर्व है। राजस्थान में ८ वीं शताब्दी में सम्पन्न विवाहों का सविस्तार उल्लेख कुवलयमाला और समराइच्चकहा में मिलता है। प्रस्तुत निबंध में मुख्यतः इन्हीं दो ग्रन्थों के आधार पर सम्बन्धित विषय पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

सगाई एवं महूर्त : समराइच्चकहा के अनुसार विवाह के पूर्व सगाई की बातें की तथा उस अवसर पर बड़ा महोत्सव किया जाता था। विवाह का दिन ज्योतिषी निश्चित करते थे। ज्योतिषियों का उल्लेख कुवलयमाला और हर्षचरित में भी है। कुवलयमाला में कहा गया है कि राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर कहा कुमार व कुवलयमाला के लग्न समय की गणना करें। इस पर ज्योतिषियों ने शास्त्र प्रमाण के अनुसार शुभाशुभ फल बतलाकर विवाह का दिन और समय निश्चित किया। समराइच्चकहा में लिखा है कि विवाह का दिन निश्चित करने के बाद प्रचुर दान-पुण्य किया गया।[1]

विवाह की तैयारियाँ : विवाह की तैयारियों का अधिक विस्तार से वर्णन समसामयिक कृति हर्षचरित में मिलता है। इसमें उल्लेख है कि विवाह के दिन ज्यों-ज्यों नजदीक आते गये राजकुल की ओर से सब लोगों की खातिर के लिये ताम्बूल पटवास और फूल बांटे जाने लगे (उद्दामदीयमानताम्बूलपटवासकुसुमप्रसादितसर्वलोकं)। चतुर शिल्पी बुलवाये गये। गांवों से तरह-तरह के सामान इकट्ठे किये जाने लगे। कुवलयमाला में भी इसी तरह का उल्लेख है। इसमें बताया

---

१ कुवलयमाला सिंघी जैन सिरीज पृ० १७०। समराइच्चकहा दूसरा भव, गाथा १२६ के बाद का गद्य-भाग।

एकत्रित करने तथा भोजन के लिये नाना प्रकार की सामग्री जुटाने की बात भी कही गई है [मविय मुसुमूरिज्जन्ति धण्णाइ पुणिज्जति सहिरा समियाओ सवकारिज्जति सण्ह-सण्हाइ उणामिलज्जति मत्ताइ, आहारिज्जन्ति कुलासह ......] ।

दूर सुदूर के सम्बन्धियों को निमन्त्रण दियागया । उनके ठहरने के लिए विशेष व्यवस्था की जाती थी । हर्षचरित और कुवलयमाला में इसका सुन्दर उल्लेख है ।[२] भवनों में सफेदी कराई गई [धवलिज्जन्ति भित्तीओ] । हर्षचरित में सफेदी करने वालों का सुन्दर चित्रण खींचा गया है । वर्णन है कि पोतने वाले कारीगर हाथ में कूची लिये कंधे पर चूने की हांडी लटकाए निसनी पर चढ़ कर राजमहल के पोरी सिखर आदि पर सफेदी कर रहे थ [उरकूचकरैश्च सुधाकपरस्कन्धै अधिरोहिणीसमारूढे धवं धवलीक्रियमाणप्रसादप्रतोली प्रकारसिखर...] कुवलयमाला में चांदी की चीजें बनवाने का उल्लेख है जबकि हर्षचरित में स्वर्ण आभूषणों के बनवाने का ।

वस्त्रों के सम्बन्ध में हर्षचरित अत्यन्त विस्तार से कहता है । कुवलयमाला में केवल उल्लेख है— पविज्जति पत्तीओ सीविज्जति कुप्पासया । ,

विवाह के दिन वर-वधू को विशिष्ट वस्त्र पहनाये जाते थे । समराइच्चकहा में राजकुमार सिंह और कुसुमावली के विवाह प्रसंग में इसे विस्तारपूर्वक बताया गया है । वधू को भली भाँति सजाया जाता था । उसे ऊंची चौकी पर बिठाया जाता था । नाई उसके पाँव के नाखून साफ करता था । वह लाल रंग का वस्त्र पहने रहती थी । नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से उस की देह पर लेप किया जाता था । तदनन्तर सधवा स्त्रियां उसे स्नान कराती थी । तरह-तरह के उसे आभूषण पहनाये जाते थे ।[१] कुवलयमाला के अनुसार भी इसी

---

२ कु मा० पृ०१७ । ह० च० चतुर्थ उच्छ्वास राज्यश्री-विवाह प्रसंग । वासुदेवशरण अग्रवाल- हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ७०-८१ ।

१ समराइच्च कहा दूसरा भव, गाथा १०१-१५४ ।

प्रकार वर को उत्तम वस्त्र पहना कर शरीर पर चन्दन का विलेपन कर, गोरोचन और सिद्धार्थ का तिलक निकाल कर विवाह-मंडप की ओर ले जाया गया था।[४] समराइच्चकहा में बरात का सुन्दर वर्णन है। रथों में आरूढ़ कई राजपुत्र सुशोभित हो रहे थे। वर हाथी पर आरूढ़ था।[५] मार्ग में स्त्री पुरुषों के झुंड ने बरात को बड़ी उत्कंठा से देखा।

बरात विवाह मण्डप में पहुँची। वहां एक वृद्धा ने उत्कृष्ट वस्त्र से सुसज्जित हो वर का स्वागत किया। इस के बाद वह हाथी से उतरा और पाताल की ओर गया। मार्ग में उत्सुक दर्शकों की भीड़ को कई बार नियन्त्रित करना पड़ा।

लग्न उपच्छाया देखकर ज्योतिषियों ने निश्चित समय को नजदीक आया समझा। उन्होंने राजा से कहा कि हथलेवा का मुहूर्त [समय] आ गया है [आसन्नपसत्थ हत्थग्गाहण महुत्त त्ति]। वर ने सफेद वस्त्र पहिन रखे थे। कुवलयमाला और समराइच्चकहा दोनों में सफेद वस्त्रों का उल्लेख मिलता है वादी पर अग्निहोम किये जाने का वर्णन है। मध्यभाग में ज्योतिषी वेद शास्त्र के ज्ञाता अनेक विद्वान् आसीन थे। दोनों ओर वर-वधू के पिता और अन्य परिवार के बड़े पुरुष बैठे थे। समराइच्चकहा में यह वर्णन अधिक विस्तार से है। हथलेवा छोड़ने के बाद वर-वधू विवाह-मण्डप की ओर गए। वेदी बड़ी सुन्दर बनी हुई थी। दोनों ओर बड़े-बड़े कांच लग रहे थे जिन में वर-वधू के पीछे बैठी स्त्रियों के सुन्दर मुख स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रहे थे। धुएं के धुए से वधू की आंखों में जो नीचे की ओर झुकी हुई थी आंसू आ गये।[६]

---

४ कुवलयमाला पृ० १७०।

५ तओ य नीहरमाणे नरवइ समागुत्तरीअयमाकलिआ वरजंतमंगलतूर रवापूरियतयलदिसामण्डलो पवरजाणवाहणपवरदुग्गामसुन्दरहत्थराव रायलोयपरिगओ महाविहवाडोवपयारकुसुमावरोहसुन्दरीसंदोहतणयाणुग समम्मो पवरन्नमाहियवरवरात्मो——(समराइच्चकहा)।

६. समराइच्चकहा दूसरा भव, गाथा १५७-१६८।

इस के बाद चार फेरे फिरने का वर्णन आता है। * पहले फेरे में धन दान दूसरे फेरे में विभिन्न प्रकार के आभूषण तीसरे फेरे में तरह-तरह के चांदी के बर्तन और चौथे में नाना प्रकार के वस्त्र प्रदान किये गए। इसके अतिरिक्त अन्य कई वस्तुएं दी गई जिन में हाथी घोड़े आभूषण तथा वस्त्र थे। अन्त में वधू के पिता द्वारा कन्या-दान का उल्लेख करते हुए अंजलि छोड़ी गई। *

राजस्थान में ही विरचित समसामयिक कृति शिशुपालवध में उल्लेख मिलता है कि बहू को ससुर की गोदी में रक्खा जाता था। यह प्रथा आज से २० वर्ष पूर्व तक मेवाड़ में प्रचलित रही जिसे इन पंक्तियों के लेखक ने भी देखा है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवाह समारोह के समय के रीतिरिवाज लगभग १२०० वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी आज कीसी प्रकार से बहुत कुछ प्रचलित है। सांस्कृतिक अध्ययन के लिये यह जानकारी बड़े महत्व की है। विवाह और अन्य मांगलिक पर्वों पर बधावणा गाने का रिवाज उस समय भी प्रचलित था—' बद्धावणय निबद्धे बद्धावणये मणभिरामं। ' यह शब्द [बधावणा] आज भी ज्यों का त्यों प्रच लित है। वस्त्रों में रेशमी वस्त्रों का बाहुल्य था। दुगुल्लदेवङ्गपटट चीणद्ध चीणाइ पवरवत्थाइ"—आदि प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख

* पढमम्मि बहूपिउणा दिन्नं हिट्ठेण मण्डले वरम्मि।
मारणा सय सहस्स अडिमक्क सुवण्णस्स ॥१७॥
बीयम्मि हारकुण्डलकडिसुत्तयतुडियसारमाहरणं।
तइयम्मि थालकच्चोलमाइयं रुप्प मण्डयं ॥१७१॥
दिन्नं च चउत्थम्मि बहुए परिओस पयड पुलएण।
पिउणा सुदु महग्घं वेत्थं नाणा पयार वि ॥१७ ॥ (समराइच्च०)
इमिणा कमेण पढमं मंडलं। दुइयं पि मणिकला सायंजलो।
आहूया कोयवाया। तइयं मंडलं। पुणो वेएणेय समेसु दिण्णा
वायत्थं। तहा चउत्थं मंडलं.......।—(कुवलयमाला पृ० १७१)।

* कुवलयमाला पृ० १८१।

हर्षचरित में भी है। मुकुट, हार, कुण्डल आदि आभूषणों का भी वर्णन इन ग्रन्थों में मिलता है वह समसामयिक हरिवंशपुराण और आदिपुराण में अधिक विस्तार से प्राप्त है। घोड़ों की विभिन्न किस्मों का उल्लेख जो समराइच्चकहा में दान के प्रसंग में आता है महत्वपूर्ण है (तुरुष्क बाल्हीक कम्बोज वज्जर इरास कालिमाइ घोड़या बब्बर)।

[अन्वेषणा भाग १ अङ्क १ में प्रकाशित]

जैन ग्रन्थों में राष्ट्रकूटों का इतिहास — १३

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजाओं के गौरवपूर्ण शासनकाल में जैनधर्म की अभूतपूर्व उन्नति हुई। कई आचार्यों ने उस समय कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की संरचना की जिनमें समसामयिक भारत के इतिहास के लिये उल्लेखनीय सामग्री मिलती है।

राष्ट्रकूट राज्य की नींव गोविन्दराज प्रथम ने चालुक्य राजाओं को जीत कर डाली थी। इस का पुत्र दन्तिदुर्ग बड़ा उल्लेखनीय हुआ है। इसका उपनाम साहसतुंग भी था। जैनदर्शन के महान विद्वान् भट्ट अकलंक इसके समय में हुए थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में लघीयस्त्रय तत्त्वार्थराजवार्तिक अष्टशती सिद्धिविनिश्चय और प्रमाण संग्रह आदि बड़े प्रसिद्ध हैं। इन के ग्रन्थों में यद्यपि समसामयिक राजाओं का उल्लेख नहीं है किन्तु कथाकोष नामक ग्रन्थ में इनकी संक्षेप में जीवनी है। इसमें इनके पिता का नाम पुरुषोत्तम बतलाया है जिन्हें राजा शुभतुंग का मन्त्री वर्णित किया गया है।[1] यह राजा शुभतुंग निःसंदेह कृष्णराज प्रथम है और इसी आधार पर डी० बी० पाठक ने इनको कृष्णराज प्रथम का समसामयिक माना है। इसके विपरीत श्रवणबेलगोला की मल्लिषेण प्रशस्ति में इन्होंने राजा साहसतुंग की सभा में बड़े गौरव के साथ यह कहा था कि हे राजा! पृथ्वी पर तेरे समान तो प्रतापी

---

१ जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी भाग १८ पृष्ठ० २२६ कथा कोष में इस प्रकार उल्लेख है—
अथैव भवति मान्यखेटाख्य नगरे वरे।
राजा शुभतुंग नामस्तन्मन्त्री पुरुषोत्तम"।

२ इंडियन एंटिक्वेरी भाग XII पृष्ठ २१५

राजा नहीं है पर मेरे समान बुद्धिमान भी नहीं ² है। "अकलंक स्तोत्र"
नामक एक अन्य ग्रन्थ में कुछ पद ऐसे भी हैं जिन्हें किसी राजा की
सभा में कहा जाना वर्णित है लेकिन इसमें कई स्थानों पर "देवोऽक
लङ्कृतो" पद आया है। अतएव प्रतीत होता है कि ग्रन्थ किसी अन्य
के द्वारा लिखा हुआ ³ है। मल्लिषेण प्रशस्ति के उक्त श्लोक सम्भवत
अनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं जो सही प्रतीत होते हैं।

श्री वीरसेनाचार्य भी प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री थे। ये अमोघवर्ष के
शासनकाल तक जीवित थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में धवला
और जयधवला टीकाएं बड़ी प्रसिद्ध हैं। धवला टीका के हिन्दी सम्पादक
डा० हीरालाल जी ने इस कार्तिक शुक्ला १३ शक संवत् ७३८ में पूर्ण
होना वर्णित किया है और लिखा है कि जिस समय राष्ट्रकूट राजा जगतुंग
राज्य त्याग चुके थे और राजाधिराज बोद्दणराय शासक थे इसे पूर्ण
किया।⁴ श्री ज्योतिप्रसाद जी जैन ने इसे अस्वीकृत कर के लिखा है कि
प्रशस्ति में स्पष्टतः "विक्कमरायम्हि" पाठ है अतएव यह विक्रम संवत्
होना चाहिए। अतएव उन्होंने यह तिथि ८३८ विक्रमी की है। मान्य
से ज्योतिष के अनुसार दोनों ही तिथियों की गणना लगभग एक सी
है। लेकिन राजनैतिक स्थिति पर विचार करें तो प्रकट होगा कि यह

---

२ राजन् साहसतुंग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः ।
किन्तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः ।
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो ।
नानाशास्त्रविचारचातुरधियः काले कलौ मद्विधाः ।
जैन शिलालेख संग्रह भाग १ लेख ५४

३ न्याय कुमुद चन्द्र की भूमिका पृ० ५५

४ अट्ठत्तीसम्हि सासिय विक्कमरायम्हि एसु संगरमो ।
पासे सुतेरसीए भाव विलग्गे धवलपक्खे ॥ ६ ॥
जगतुंगदेव रज्जे रियम्हि कुंभम्हि राहुणा कोणे ।
सूरे तुलाए संते गुरुम्हि कुलविल्लए होंते ॥ ७ ॥
बोद्दणराय णरिंदे णरिंदचूडामणिम्हि भुंजंते ॥ ८ ॥
धवला १ । १ प्रस्ता० ४४-४५

तिथि विक्रमी के स्थान पर शक संवत् ही होना चाहिये ।[५] इसका मुख्य आधार यह है कि विक्रमी संवत नाम का प्रचलन इतना प्राचीन नहीं है । इसके पूर्व इस संवत् का नाम कृत और मालव संवत मिलता है । विक्रमी संवत् का प्राचीनतम लेख ८९८ का धौलपुर का चंड महासेन का अब तक मिला है । किन्तु इसका प्रचलन उत्तरी भारत में अधिक रहा है ।[६] गुजरात और दक्षिण भारत में उस समय लिखे गए ताम्रपत्रों में शक संवत् या वल्लभी संवत् मिलता है । इसमें उल्लेखित जगतुंग निःसन्देह राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज तृतीय है और नोहणराय अमोघवर्ष । अगर विक्रमी सम्वत् ८३८ मानते हैं तो यह तिथि १९।१-७८० ई० हो जाती है उस समय गोविन्दराज का पिता ध्रुव निरुपम भी शासक नहीं हुआ था । इसके अतिरिक्त हरिवंशपुराण में वीरसेनाचार्य का उल्लेख है । लेकिन उस की इस धवला टीका का उल्लेख नहीं है । स्मरण रहे कि इस ग्रन्थ में समन्तभद्र देवनन्दि महासेन आदि आचार्यों के ग्रन्थों का स्पष्ट उल्लेख है ।

जयधवला के अन्त में लम्बी प्रशस्ति दी हुई है । इससे ज्ञात होता है कि वीरसेनाचार्य की इस अपूर्ण कृति को जिनसेनाचार्य ने पूर्ण किया था । यह टीका शक संवत् ७५९ में महाराजा अमोघवर्ष के शासन काल में पूर्ण की गई थी ।

पूर्ववर्णित हरिवंश पुराण की प्रशस्ति के अनुसार [७] शक सं ७०५ में जब दक्षिण में राजा वल्लभ उत्तर दिशा में इन्द्रायुध पूर्व में वत्सराज और सौरमंडल में जयवराह राज्य करते थे तब वर्धमान नामक ग्राम में उक्त ग्रन्थ पूर्ण हुआ था । शक सम्वत् ७०५ की राजनैतिक स्थिति बड़ी उल्लेखनीय है । दक्षिण के वल्लभ राज का जो

---

५. अनेकांत वर्ष ७ पृ० २०७–२१२

६ भारतीय प्राचीन लिपिमाला प० १६६

७. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्साधि (दि) राजेऽपराम्
सौराणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥ ५२ ॥

उल्लेख है यह सम्भवतः ध्रुव निरुपम है। गोविन्द II की उपाधि भी 'वल्लभराज' थी। इसी प्रकार अमरामेगोला के लेख नं० २४ में भ स्तम्भ के पिता ध्रुवनिरुपम की भी उपाधि वल्लभराज वर्णित है। गोविन्दराज का शासनकाल अल्पकालीन था और शक सं० ७०१ के धूलिया के दानपत्र के पश्चात् उसका कोई लेख नहीं मिला है। अतएव यह ध्रुव निरुपम के लिये ही ठीक है। उत्तर में इन्द्रायुध का उल्लेख है। यह भण्डी वंशी राजा इन्द्रायुध है। फ्लीट भण्डारकर प्रभृति विद्वानों ने भी इसे ठीक माना[8] है। कुछ इसे गोविन्दराज III के भाई इन्द्र III मानते हैं जो उस समय राष्ट्रकूटों की ओर से गुजरात में प्रशासक था स्वतन्त्र[10] राजा नहीं। प्रशस्ति में तो स्पष्टतः इन्द्रायुध पाठ है अतएव इस प्रकार के तोड़ मोड़ करने के स्थान पर इसे इन्द्रायुध ही माना जाना ठीक है। पूर्व में वत्सराज का उल्लेख है। शक सं० ७०० में लिखी गई कुवलयमाला में इस राजा को जालोर का[11] शासक माना है। अवन्ति प्रतिहार राजाओं के शासन में सम्भवतः दशिदुर्ग के शासन पूर्व काल से ही थी।[12] डा० दशरथ शर्मा एवं भण्डारकर के अनुसार वत्सराज और अवन्ति के शासक अलग २ थे हैं।

आचार्य जिनसेन जो आदिपुराण के कर्ता थे।[13] अमोघवर्ष

---

८ अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृष्ठ ५२-५१

९ एपिग्राफिया इण्डिका भाग XVIII पृ-११ ११२

१० डा० गुलाबचन्द्र चौधरी हिस्ट्री आफ नोर्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेस पृ० १३

११ सगकाले वोलीणे वरिसाण सएहिं सत्तहिं गएहिं।
एग दिण ऊणेहिं रइया अवरण्ह वेलाए।
परभडभिउडीभंगो पणईयण रोहिणी कलाचंदो।
सिरिवच्छरायणामो णरहत्थी पत्थिवो जइया।।[कुवलयमाला की प्रशस्ति]

१२ अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ४०

१३ "इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचितमेघदूतवेष्टितपार्श्वाभ्युदये——" [पार्श्वाभ्युदय के सर्गों के अन्त की पुष्पिका]

के पुत्र के नाम से विख्यात है। उत्तरपुराण की प्रशस्ति में स्पष्टत: वर्णित है कि वह जिनसेनाचार्य के चरणकमलों में मस्तक रख कर अपने को पवित्र मानता था।[14] इसकी बनाई हुई प्रश्नोत्तर रत्नमाला नामक एक छोटी सी पुस्तक मिली है। इसके प्रारम्भ में "प्रणिपत्य वर्द्धमानं" शब्द है। यद्यपि यह विवादास्पद है कि अमोघवर्ष जैन धर्म का पूर्ण अनुयायी था अथवा नहीं किन्तु यह सत्य है कि वह जैन धर्म की ओर बहुत आकृष्ट था। इसी के शासन काल में लिखी महावीराचार्य की गणितसार संग्रह नामक पुस्तक में अमोघवर्ष के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने समस्त प्राणियों को प्रसन्न करने के लिये बहुत[15] काम किया था और जिसकी चित्तवृत्ति रूपी अग्नि में पापकर्म भस्म हो गये। अतएव ज्ञात होता है कि वह बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति का था। इसमें स्पष्टत: जैनधर्मावलम्बी वर्णित किया है। राष्ट्रकूट शिलालेखों से ज्ञात होता है कि अमोघवर्ष कई बार राज्य छोड़कर एकांत का जीवन व्यतीत करता था और राज्य युवराज को सौंप देता था। संजान के दानपत्र के श्लोक ४७ व अन्यदान पत्रों में इसका स्पष्टत: उल्लेख है। प्रश्नोत्तर रत्नमाला में अन्तिम दिनों में उसका राज्य से विरक्त होना[16] वर्णित है। अगर अमोघवर्ष जैनधर्म की ओर आकृष्ट नहीं होता तो निःसंदेह जिनसेनाचार्य उसकी प्रशंसा में सुन्दर पद नहीं लिखते।[17] उसमें लिखा है कि उसके आगे गुप्त राजाओं की कीर्ति भी फीकी पड़ गई थी। संजान के दानपत्र में भी इसी प्रकार का उल्लेख

---

१४ यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरज: पिशङ्गमुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युति: ।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपति: पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥८॥

उत्तर पुराण की प्रशस्ति

१५ नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य का इतिहास पृ० १९२

१६ अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ८९–९०

१७ गुर्जरनरेन्द्रकीर्तेरन्त: पतिता शशाङ्कशुभ्राया।
गुप्तैव गुप्तनृपते: शकस्य मशकायते कीर्ति: ॥१२॥

है।[18] उत्तर पुराण की प्रशस्ति में अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी राजा कृष्ण II की[19] प्रशंसा की है। किन्तु यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि यह राजा जैन था अथवा नहीं। इसका सामन्त लोकादित्य जो वनवास देश का राजा था अवश्यमेव जैन था। इसकी राजधानी[20] बंकापुर थी। यह जैन धर्म का बड़ा भक्त था।

शिलालेखों और ताम्रपत्रों में भी गोविन्दराज और अमोघवर्ष का वर्णन मिलता है। मयबंशी सामन्त चाकिराज की प्रार्थना पर शक सं० ७३५ में गोविन्दराज III ने वासमयक नामक ग्राम यापनीय संघ को दिया था। यह लेख गोविन्दराज III के शासन काल का अन्तिम लेख है। उत्तरपुराण मे वर्णित लोकादित्य के पिता बंकेय के कहने पर अमोघवर्ष ने जैन मंदिर के लिये भूमिदान भी दी थी ऐसा एक दानपत्र से प्रकट होता है।[21]

महाकवि पुष्पदंत और सोमदेव उस युग के महान विद्वान थे। पुष्पदंत का एक नाम खंड भी था। ये महामात्य भरत और उनके पुत्र नन्न के आश्रित रहे थे। ये दोनों राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज के III के सम समायिक थे। इसने कृष्णराज के लिये 'तुडिगु' 'बल्लभ नरेन्द्र और कण्हराय' शब्द भी प्रयुक्त किये हैं।[22] तिरुक्कडुत्तनगरम् के शिलालेख में कण्हरदेव शब्द इस राजा के लिए प्रयुक्त[23] किया

१८ हत्वा भ्रातरमेवराज्यमहरत् देवी च दीनस्तथा।
लक्ष कोटिमलेखयत् किलकलौ दाता स गुप्तान्वय
येनात्याजि तनु स्वराज्यमसकृत् बाह्यार्थ कैः का कथा
ह्रीस्तस्योन्नति राष्ट्रकूटतिलक दातेति कीर्त्यामपि। ४८।
संजान का ताम्रपत्र

१९ उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २६—२७

२० उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २९ और ३०

२१ जैन लेख संग्रह भाग ३ की भूमिका प० ९५ से ९७

२२ सिरीकण्हरायकरयलणि हिय असि जलवाहिरि दुग्ग मरि।
आदि पुराण भाग १ की भूमिका प० १६

२३ एपिग्राफिया इण्डिका भाग III पृष्ठ २८२ एवं साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शन भाग ३ पृ० ७६

गया है। यह राजा जब मेलपाटी के सैनिक शिविर में था तब सोमदेव ने यशस्तिलक चम्पू ग्रन्थ को पूर्ण किया था।[24] इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि अरिकेसरी के पुत्र वद्दिग की राजधानी गंगधारा में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। इसमें स्पष्टतः वर्णित है कि कृष्णराज ने पाण्ड्य सिंहल चोल चेर आदि के राजाओं को जीता था। इस बात की पुष्टि समसामयिक ताम्रपत्रों से भी होती है। पुष्पदन्त के आदिपुराण में मान्यखेटपुर को मालव के राजा द्वारा विनष्ट करने का उल्लेख है।[25] यशोधर चरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि जिस समय सारा जनपद नीरस हो गया था। चारों ओर दुःसह दुःख व्याप्त हो रहा था। जगह जगह मनुष्यों की खोपड़ियां और कंकाल बिखर रहे थे और सर्वत्र नरक ही नरक दिखाई दे रहा था उस समय महात्मा नन्न ने मुझे सरस भोजन और सुन्दर वस्त्र दिये अतएव वह चिरायु हो।[26] महाकवि धनपाल की पाइय लच्छी नाममाला[27] के अनुसार यह

---

२४ 'पाण्ड्यसिंहलचोलचेरमप्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटी प्रवर्द्धमानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे'' एवं ८८१ शक के दानपत्र में भी इसी प्रकार उल्लेखित है।

२५. दीनानाथधनं सदा बहुजनं प्रोत्फुल्लवल्लीवनं मान्याखेटपुरं पुरन्दरपुरीलीलाहरं सुन्दरम्। धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियं। क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्री पुष्पदन्तः कविः। यह पद्य क्षेपित है और लघक है। प्र० श्लो० १४ महापुराण की ५० वीं सन्धि।

२६ जण वयणीरसि दुरियमलीमसि। कइणिंदायरि दुसहे दुहयरि। पडियकवालइ णरकंकालइ। बहुर कालइ अइ दुक्कालइ। पवरागारि सरसाहारि सण्हि चेलि वर तम्बोलि॥ महु उवयारिउ पुण्णि पेरिउ। गुणभत्तिल्लउ णण्णु महल्लउ॥ होउ चिराउसु यशोधर चरित ४।३१

२७. विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि। मालवनरिंद धाडीए लुडिए मन्नखेडम्मि॥ पाइय लच्छीनाममाला (भावनगर) पृ० ४५

मिलता है। नीतिवाक्यामृत में कई प्रकार के राजकरों का उल्लेख है। राज्य कर जो प्राय भाग के रूप में लिया जाता था यह उपज का १/६ भाग था। इसके अतिरिक्त शुल्क मंडपिकाओं द्वारा भी संग्रहित किया जाता था। राजाओं के ऐश्वर्य का सविस्तार वर्णन है। इसके राज्याभिषेक के समय किये जाने वाले उत्सवों का भी आदि पुराण में वर्णन है। राजाओं का अभिषेक भी एक विशिष्ट पद्धति द्वारा कराया जाता था। राज्याभिषेक के समय 'पट्ट बन्धन' होता था। यह पट्ट बन्धन युवराज पद पर नियुक्त करते समय भी बांधा जाता था। पट्टबन्धन का उल्लेख शिलालेखों में भी मिलता[३१] है। अन्तःपुर की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। इसकी रक्षा के लिये वृद्ध कंचुकीगण नियुक्त थे। राजाओं द्वारा जलक्रीड़ाएं और कई प्रकार की गोष्ठियां किये जाने का भी वर्णन मिलता है।

सांस्कृतिक सामग्री

उस समय की सांस्कृतिक गतिविधियों के अध्ययन के लिये जैन सामग्री बहुत ही महत्वपूर्ण है। वर्णव्यवस्था[३२] वर्णाश्रम धर्म[३३] सामाजिक संस्कार[३४] वेशभूषादि[३५] भोजन व्यवस्था[३६] शिक्षा[३७]

---

३१ "पट्टबन्धापदेशेन तस्मिन् प्राबद्ध कृते सता (आ० पु ११.४२) एवम् पट्टबन्धास्म व्यायाम् समबधीरयन्। आ० पु० ५।२०७ शक ने के शक सं ७१९ के लेख में" राष्ट्रकूट-पल्लवान्वयतिलकाभ्यां मूर्धाभिषिक्त गोविन्दराज नन्दिवर्माभिषेकाभ्यां समुभिष्ठित राज्याभिषेकाभ्यां निजकरविहितपट्टविभूषित ललाट-पट्टौ विस्मात' इसी प्रकार पटटबन्धोत्सवबन्धो ललाटे विनिवेशित । १६।१२ आ पु० उल्लेख है। पुष्पदंत ने राजाओं के अभिषेक और चमरों का उल्लेख व्यास के साथ किया है "चमराणिक वट्टाविय गुणाइ। अरिट सेय बोय पुमसत्तणाइ'

३२ आदि पुराण १६।१८१-१८८, २४३-२४६ २४७ २१।१४२
३३ „ ३८ ४५-४८ और ४२ वा पर्व
३४ „ ३० और ३९ वां पर्व
३५ „ ४।७३
३६ „ ३।१८९-१८८-२०१ ११।७१
३७ „ १४ (११०-१२१) १६ (१०५-१२८)

चित्रकला [३८] संगीत [३९] आभूषण,[४०] सौन्दर्य प्रसाधन [४१] चिकित्सा साधन [४२] मतों की व्यवस्था [४३] आदि का इनमें सांगोपांग वर्णन मिलता है। समसामयिक भारत के वास्तुशिल्प का भी सविस्तार वर्णन मिलता है। मंदिर महल आदि के वर्णनों में इस प्रकार की सामग्री उल्लेखनीय है। अल्तेकरजी ने अपने ग्रन्थ राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स में इस सामग्री का अधिक उपयोग नहीं किया है। इस सामग्री का अध्ययन वांछनीय है।

---

३८ ९ (१७०–१९१)

३९ १४ (१०४–११०) १२ (२०३–२०९)

४० १६ (४४–७१) १५ (८१–८४)

४१ १२ (१७४) ११ (१११) ६ (३०–३२)

४२ ११।५९, ११।५८ ११।११६ ११।१७४–७६ २८ (३८ ४०)

४३ २६ (११२–११५) २६ (४८) २६ (१२३–१२०) २८ (३२–३६) ११ (१५७)

[बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित]

महाराणा मोकल की जन्मतिथि | १४

महाराणा मोकल महाराणा लाखा का पुत्र और कुम्भा का पिता था। इसकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में विवाद है। मेवाड़ की ख्यातों में यह तिथि वि. स० १४५२ दी हुई है।[1] श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने यह तिथि वि० स १४६१ के आस-पास मानी है।[2] ओझाजी ने इसे छोटी अवस्था में ही शासक होना माना है।[3] प्राप्त सामग्री के आधार पर यह प्रतीत होता है कि यह तिथि वि० सं० १४५२ के आस-पास ही मानी चाहिये।

मोकल की पुत्री का विवाह अचलदास खींची के साथ हुआ था वह गागरोण का शासक था। इसकी मृत्यु मालवे के सुल्तान हो शंगशाह के आक्रमण के समय हुई थी। यह घटना वि सं० १४८०-८५ के मध्य सम्पन्न हुई थी।[4] अचलदास ने कनल टॉड के अनुसार शादी के समय गागरोण की रक्षा का वचन भी मेवाड़ के शासकों से लिया था लेकिन नागोर के सुल्तान के साथ युद्ध में व्यस्त होने के कारण

१ वीर विनोद भाग १ पृ० ३११–१४

२ मारवाड़ का इतिहास पृ० ७५ का फुटनोट

३ ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० २७१

४ तारीख ए–फरिश्ता का अनुवाद भाग ४ पृ० १८३। मुन्तखबउत्तवारीख का अनुवाद इसमें वि० सं० १४७९ और १४८४ में २ बार ग्वालियर पर आक्रमण करना उल्लेखित है।

मोकल ने पर्याप्त सहायता संभवत नहीं दी।[5] अचलदास खीची की वचनिका से प्रकट होता है कि मोकल की पुत्री बड़ी चतुर थी। राज्य की सारी शक्ति उसने अपने हाथ में ले रक्खी थी। मोकल की तिथि जानने के लिये एकमात्र विश्वस्त साधन अचलदास खीची की वचनिका है जिसका सम्पादन होकर भी सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर से प्रकाशन हो गया है।

वचनिका का रचनाकाल

वचनिका के रचनाकाल पर विचार करना इसलिए आवश्यक हो गया है कि इसे कुछ विद्वान् सम-सामयिक कृति नहीं मानते हैं। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसे वि० सं० १५०० के आस पास की कृति बतलाई है।[6] इसकी हस्तलिखित प्रति वि० सं० १६२ की अनूप संस्कृत पुस्तकालय में उपलब्ध है। श्री मेनारिया जी ने हाल ही में इसके रचनाकाल के संबंध में कुछ संदेह किया है। उनकी आपत्ति के मुख्य आधार ये हैं—[7]

(१) इसमें होशंगशाह का पूरा नाम उल्लेखित नहीं है। इसके लिये केवल मात्र गोरी सुल्तान आलम आदि नाम ही दिये हैं।

(२) इसमें कूम्भी के राजा का नाम अमरसिंह दिया है जो वि० सं० १४ १ में मर गया था।

(३) मोकल के पूना बाई नामकी कोई पुत्री ख्यातों में वर्णित नहीं है।

---

५ नागोर के सुल्तान के साथ महाराणा मोकल के युद्ध कई वर्षों तक चल रहे प्रतीत होते हैं। चित्तौड़ के वि० सं० १४८५ के लेख में मोकल की विजय होना उल्लेखित है। इसी प्रकार का उल्लेख शृंगी ऋषि के लेख में भी है। फारसी तवारीखों में इसी प्रकार महाराणा की हार होना उल्लेखित है। वीर विनोद में २ युद्ध होना वर्णित है जिसमें एक में महाराणा की हार और दूसरे में जीत होना वर्णित है। [illegible] रासो में लगभग ऐसा ही वर्णन है।

६ राजस्थानी साहित्य पृ० ८३

७ शोध पत्रिका वर्ष १७ अङ्क १-२ पृ० २५-३०

यह तो विदित है कि होशंगशाह का पूरा नाम अलपखां ही था शिलालेखों में यह नाम कई बार उल्लेखित किया है। वि० सं० १४८१ के देवगढ़ के एक लेख में जो जैन लेख संग्रह भाग ३ के पृ० ५१४ पर प्रकाशित हुआ है, होशंगशाह के स्थान पर आलम खां ही नाम दिया है जो इस प्रकार है:—

'श्रीमान् मालवपातके शक नपे गोरी कुलोद्योतके नि' काम्दै सिकमाय मण्डपपुराच्छीसाहिआलम्मके।

इसमें स्पष्टतः होशंगशाह का नाम आलमखां दिया है। शिला लेख सम-सामयिक है और प्रामाणिक आधार है। इसके अतिरिक्त इसके लिये जो 'गोरी सुल्तान' आलम आदि नाम दिये हैं उन पर संदेह नहीं किया जा सकता है। सम-सामयिक कृतियों में कई ऐसे संदर्भ उपलब्ध हैं जिनमें बादशाह का नाम न देकर केवल मात्र 'सुरताण' शब्द ही दिया मिलता है। इसमें गोरी शब्द दिया हुआ है उससे उल्टा यह ध्वनित होता है कि लेखक समसामयिक ही था। गोरी वंशी वि सं १४९१ के पश्चात् शासक नहीं रहे थे। इनके पश्चात् वहाँ खिलजीवंशी शासक बन चुके थे। अगर यह रचना पश्चात् कालीन होती तो इसमें खिलजी शब्द भी अङ्कित कर सकता था क्योंकि गोरी वंशियों का शासन बहुत ही थोड़े समय तक रहा था।

दूसरी आपत्ति समरसिंह के सम्बन्ध में है। मेरे ख्याल से बूंदी के राजा का नाम इसमें समरसिंह दिया ही नहीं है। डा० दशरथ शर्मा की भी यही मान्यता है। उन्होंने बड़ोदा के ओरियन्टल जरनल के सितम्बर १९५४ के अङ्क में प्रकाशित लेख में यह स्पष्ट कर दिया है कि इसमें बूंदी के राजा और देवड़ाओं का उल्लेख मात्र* है। इनके शासकों के नाम नहीं दिये हैं। मूल पंक्ति इस प्रकार है— 'बूंदी का चक्रवर्ती अवर

---

८ डा० दशरथ शर्मा के लेख—

(१) राजस्थान भारती का कुम्भा विशेषांक पृ० २२-२३

(२) अचलदास खीची की वचनिका की भूमिका

(३) जरनल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट आफ बड़ौदा (सितम्बर १९५४) पृ० ७४ से ८१

देवड़ा हिम्मूराव वदि ठोर दूसरा मालदेव समरसिंह मतीना' । इसमें समरसिंह को बूंदी का शासक अंकित नहीं किया है। इस पद्य का अर्थ यह लेना चाहिए कि बूंदी का स्वामी राजा सिरोही का देवड़ा राजा मालदेव समरसिंह आदि युद्ध में सम्मिलित हुये। समरसिंह और मालदेव का वंश उल्लिखित नहीं है। अतः इससे बूंदी के सम्बन्धी मानने से यह अर्थ निकलता है कि यह कृति मन साम्यिक ही है। बूंदी के हाड़ा न तो इसके पूर्व और न इसके पश्चात् कभी भी स्वाधीन रहे थे। वे प्रारम्भ में मेवाड़ के राजाओं के कुछ समय तक मालवे के खिलजी बनियों के और इसके बाद फिर मेवाड़ वालों के अधीन रहे थे। मुगलों के साथ संधि के बाद वे मुगलों के आधीन हो गये केवल मात्र मोकल के अन्तिम दिनों में वे लोग स्वाधीन हो गये थे इसी कारण महाराणा कुंभा को अपने शासनकाल में सबसे पहले इनको अधीन करके करवाना बनाना पड़ा था। श्री शारदा जी के अनुसार हाड़ा मालदेव मोकल का समकालीन भी था।[10]

इसके अतिरिक्त वचनिका में ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह और रावल गइपा का उल्लेख है जो वि० सं० १४८० में शासक के रूप में विद्यमान थ 'पंच पद प्रस्थान विषम पद व्याख्या' नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति के अनुसार डूंगरपुर में महारावल गइपा वि० सं० १४८० में शासक के रूप में विद्यमान था। डूंगरसिंह के पिता वीरम देव की अन्तिम तिथि वि० सं० १४७१ आषाढ़ सुदी ५ है जो आमेर शास्त्र भण्डार के ग्रन्थ 'पटकर्मोपदेश माला" की प्रशस्ति की है।[11]

तीसरी आपत्ति मेवाड़ की ख्यातों में मोकल की पुत्री का उल्लेख न होना है। ख्यातों में मेवाड़ की रानियों के नाम गलत दिये हैं।

---

९ जिरवा देसमने दुर्गविषम हाडावटी हेलया।
वस्यापन् करदाभिमान बमस्वमानुर स्वंभयत् ॥
कुंभलगढ प्रशस्ति

१० शारदा—महाराणा कुंभा पृ० ११

११ प्रशस्ति संग्रह (अमृतलाल मगनलाल शाह) पृ० १५ एवं,, (श्री कासलीवाल) पृ० १०१

ओझाजी ने इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला है कि ख्यातों में रानियों के नाम प्रायः गलत दिये हुए हैं। उनका कथन है कि "ख्यातों में १६ वीं शताब्दी तक के राजाओं की रानियों के नाम तो मिलते ही नहीं हैं यदि कुछ नाम मिलते हैं तो शिलालेखों में ही— वि० सं० १५०० और इसके कुछ पीछे तक रानियों के नाम जो ख्यातों में दिये हैं वे विश्वास योग्य नहीं हैं।' [१२]स्वयं मोकल की रानियों के नाम भी गलत दिये हुये हैं। टॉड ने पुष्पादेवी को मोकल की पुत्री माना है जो भी ख्यातों के आधार पर ही था।

बीकानेर वाली प्रति घटना के लगभग १५० वर्ष बाद की है। अतएव इसमें वर्णित घटनायें अप्रामाणिक नहीं मानी जा सकती हैं जब तक कि कोई समसामयिक अधिक प्रामाणिक तथ्य प्रकाश में नहीं आ जावे। इसे वि० सं० १६०० के आस-पास की कृति मानी जा सकती है।

ग्रन्थ सामग्री

श्री रेऊ द्वारा दी गई तिथि को महाराणा मोकल की जन्मतिथि मान ली जावे तो गयासशाह पर हार्दमशाह के आक्रमण के समय कभी भी उसके विवाह योग्य पुत्री नहीं हो सकती थी। अतएव मोकल की तिथि कभी भी वि० सं० १४५२ के पश्चात् नहीं रखी जा सकती है, इसके पूर्व अवश्य। श्री रेऊ द्वारा भ्रमात्मक तिथियाँ मानने का आधार क्या है? अस्पष्ट है। सम्भवतः राव रणमल को महाराणा कुंभा के शासनकाल में वि० सं० १४९५ तक हुई घटनाओं का श्रेय देने के लिए ही ऐसी कल्पना की गई प्रतीत होती है। महाराणा खेता की निधन तिथि भी इसी प्रकार भ्रमात्मक मानी गई है। सोम-सौभाग्य-काव्य के अनुसार वि० सं० १४५० में महाराणा लाखा मेवाड़ में शासक के रूप में विद्यमान थे। अतएव इस तिथिक्रम पर विचार करना आवश्यक है। निस्संदेह यह सत्य है कि कुंभा राज्यारोहण के समय छोटा सा बच्चा नहीं था। वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में कुंभा के लिये "बाल्येपिताप्यविषयामकर्ष प्रयातां श्रीकुंभकर्ण पृथिवीपतिर दभुतोऽयं" वर्णित है। इसी प्रकार वर्णन राणकपुर के लेख में भी

---

१२ औझा निबन्ध संग्रह भाग २ पृ० १७२

है। दोनों ही इतियां राज्याश्रित कवियों द्वारा विरचित की हुई नहीं है। इसके अतिरिक्त महाराणा कुंभा की मृत्यु के समय उसके ज्येष्ठपुत्र ऊदा के विवाह योग्य एक पुत्री और दो पुत्र[11] थे। यह तब ही संभव हो सकता है कि कुंभा राज्यारोहण के समय पूर्ण वयस्क हो। अतएव जब वि० सं० १४९० में कुंभा पूर्ण वयस्क था और १४८०–८५ के मध्य मोकल की पुत्री विवाहित थी तब उसकी जन्म तिथि वि० स० १४६६ के आसपास नहीं रखी जा सकती है। राजस्थान भारती के वर्ष १ अंक २ में लिखते हुये डा० दशरथ ने लिखा है कि (क) महाराणा मोकल की मृत्यु स० १४८५–१४८६ के बीच हुई थी। उस समय उसके ७ पुत्र थे अतः इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देहावसान के समय महाराणा मोकल की आयु १४ या १५ वर्ष न होकर उससे कहीं अधिक थी। ऐसी ही संभावना होने पर हम पुष्पावती को मेवाड़ के महाराणा मोकल की पुत्री मान सकते हैं। (ख) किन्तु यह अधिक संभव है कि पुष्पावती किसी राणक मोकल की पुत्री थी जो महाराणा मोकल से भिन्न था। वचनिका में ऐसी कोई बात नहीं है जो राणा मोकल को महाराणा मोकल मानने के लिये विवश करे।

वचनिका में अचलदास अन्य समय में जब अपने शौर्य और त्याग की कथा के सम्बन्ध में कहता है तब यह गर्व से कहता है कि इसे मोकल कुंभरसी महपा आदि सुनेंगे तो वे भी प्रसन्न होंगे। यहां मोकल का संदर्भ निःसंदेह मेवाड़ के महाराणा से सम्बन्धित है तो कोई कारण नहीं है कि पुष्पावती को अन्य राणा मैं इसकी पुत्री नहीं माने। मेवाड़ में ही नहीं अचलदास खीची की कथा लिखने वाले परवर्ती कालीन लेखकों ने इसे ठीक माना है। अतएव डा० दशरथशर्मा का उपरोक्त (ख) में वर्णित विचार माननीय नहीं है।

इसी प्रकार राव रणमल की जन्म तिथि श्री रेऊ ने वि० सं० १४४१ वैशाख सुदी ४ मानी है। मारवाड़ की ख्यातों में यह तिथि वि० सं० १४१२ भी मिलती है। वीर मायण में वीरमदेव सकरावत की बात छपी है उस में यह तिथि वि सं० १४१२ छपी है। अतएव इसके सामग्री पर अधिक शोध करने की आवश्यकता है।

---

११ महाराणा कुम्भा पृ० ६५–६६

भगवान शिव के २८ अवतार माने गये हैं जिनमें लकुलीश इनका अन्तिम अवतार है। संस्कृत में लकुलीश के लिये नकुलीश शब्द प्रयोग में लाया गया है किन्तु बूलर[1] भांडारकर प्रभृति विद्वानों ने लकुलीश शब्द को ही प्राचीन स्वीकार किया है। इनका कहना है कि सामान्यतया प्राकृत के व्याकरण के नियमानुसार 'ल' का लोप होकर उसके स्थान पर 'न' का प्रयोग अधिक होता था जबकि न के स्थान पर 'ल' का प्रयोग कम। इसके अतिरिक्त शिव स्वयं लकुल लेकर अवतरित हुये हैं अतः लकुलीश शब्द ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

पाशुपत मत का प्रवर्तक कौन ?

नागरी प्रचारिणीपत्रिका वर्ष १३ अंक ३–४ में श्री विश्वम्भर पाठक ने पाशुपत मत के प्रवर्तक श्री कण्ठ को माना है। इनका कहना है कि महाभारत में जहाँ ५ दर्शनों का विवेचन है वहाँ पाशुपत मत के प्रवर्तक के रूप में श्री कण्ठ का नाम ही[2] दिया है। तंत्रालोक में वर्णित

---

१ जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी VoXXII पृ १५१ एवं आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया वर्ष १९०७ में डी आर० भंडारकर के लेख

२. सांख्यं योगं पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतस्तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै ॥६४॥
उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः।
उक्तवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ॥६७॥ शान्तिपर्व पृ० ३४९

है कि श्री कण्ठ ने पंचस्रोतोक्त शिवशासन का[3] प्रवर्तन किया। कालान्तर में इसके विलुप्त हो जाने पर अद्वैत त्रिक द्वैताद्वैत सिद्धान्त और द्वैतादि लाकुलीश के विभिन्न मतों का प्रवर्तन हुआ। अतएव श्री पाठक की मान्यता है कि इन वाक्यों से प्रतीत होता है कि श्रीकंठ ही शैवमत के आद्य आचार्य हुये और क्रमशः इस मूल मत से अलग होकर अनेक सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई। श्री प्रबोधचन्द्र बागची ने बिना किसी प्रमाण के ही यह लिखा है कि श्री कंठ और लकुलीश संभवतः गुरुशिष्य होंगे और इसीलिए पाशुपत मत के साथ दोनों के नाम जुड़े हैं। तंत्रालोक में भी दोनों को शिवशासन से सम्बद्ध बत[4]लाये हैं। अभिनवगुप्त[4] यह भी कहते हैं कि श्री कंठ के पदोत्थान के लिये ही लकुलीश का आविर्भाव हुआ'। यद्यपि इन ग्रंथों में श्री कण्ठ का गुणगान हो रहा है किन्तु पाशुपत धर्म की जो धारा उत्तरी और दक्षिणी भारत में फैलाई थी उसमें लकुलीश का ही प्रधान योगदान रहा था। शिलालेखों में लकुलीश आचार्यों का पाशुपताचार्य कहा गया है। एक शिव मंदिर के वि॰सं॰ १०२८ के लकुलीश सम्प्रदाय के शिलालेख में हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक कीर्ति फैलाने वाला कहा गया[5] है। तंत्रालोक के अवतरण से जो स्पष्ट है कि श्री कण्ठ द्वारा चलाया हुये इस मत की कई शाखायें होगईं किन्तु इन शाखाओं में लकुलीश सम्प्रदाय वाले ही अधिक विख्यात हुये। अगर लकुलीश नहीं होते तो निसंदेह पाशुपत सम्प्रदाय इतना अधिक विख्यात नहीं होता। श्री पाठक जी ने भले ही साहित्यिक आधार पर श्री कण्ठ के सम्बन्ध में

---

३ तच्च पञ्चविधं प्रोक्तं शक्तिवैचित्र्यचित्रितम्।
पञ्चस्रोत इति प्रोक्तं श्री मच्छ्रीकण्ठशासनम् तंत्रालोक जि १ पृ॰ ३४ (नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ११ पृ॰ ३१८ से उद्धृत)

४ एवंविपर्ययात् प्राह्यमस्य शिवशासनम्
द्वा वाप्तौ तत्र च श्रीमच्छ्रीकण्ठ लकुलेश्वरौ (वही पृ॰ ३१६)

५. तेभ्यो——————लेख समुद्रगतात्महस——योगिन। आपाशुपत भूमयो हिमशिला च (च) ग्गोत्सङ्गकारागिरेरासेतो रघुवंश कीर्ति विपुलास्तो—— एकलिंग मंदिर का १०२८ का शिलालेख

सामग्री अवश्य प्रस्तुत की है किन्तु शिलालेखों में लकुलीश को पाशुपत सम्प्रदाय का आद्य आचार्य कहा गया है। कहीं कहीं तो आरम्भ ही 'ॐ नमो लकुलीशाय' से किया गया है। इस सामग्री पर भी हमें दृष्टि डालनी पड़ेगी। अतः यही कहा जा सकता है कि जो मत श्रीकण्ठ से प्रारम्भ किया था और जो विलुप्त प्राय: सा हो गया था उसे लकुलीश ने पुनः पल्लवित किया। शिलालेखों में श्रीकंठाचार्य का बहुत ही कम उल्लेख है। पुराणों में भी लकुलीश को ही शिव के अवतार के रूप में वर्णित किया है।

उत्पत्ति

यह बतलाना कठिन है कि भगवान शिव के विभिन्न अवतारों की कल्पना कब हुई थी? पुराणों में इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में बहुत ही कम सामग्री उपलब्ध है। लिंग और वायु पुराण में इस मत का उद्भव काल वर्णित है। वहाँ लिखा है कि जब भगवान कृष्ण और द्वैपायन व्यास अवतरित होंगे तब ही शिव भी लकुल लेकर अवतरित[१] होंगे। पुराणों का यह कथन अधिक विश्वसनीय नहीं है। सचमुच बात यह है कि सामान्यतया सभी उपासक अपने उपास्य देव को परमब्रह्म या शक्तिशाली देव के रूप में पूजते हैं। कालान्तर में यह भावना इतनी बलवती हो जाती है कि उन्हीं देवों को लोक में पूजे जाने वाले अन्य देवों के साथ सम्बन्धित करने की चेष्टा करते हैं। अपने मत के प्रचार हेतु कई चमत्कारिक घटनाओं की कल्पना कर लेते हैं। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पाशुपताचार्यों ने भी लकुलीश को भगवान श्री कृष्ण का समकालीन बतलाकर अपने मत की अपेक्षाकृत प्राचीन बतलाने का प्रयास किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

मथुरा से प्राप्त वि० सं० ४३७ के चन्द्रगुप्त II के लेख में पाशुपताचार्य कुशिकान्वयी उदिता चार्य का[२] उल्लेख है। यह कुशिक

---

१ यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायन प्रभु। १ ५
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषोत्तमः।
वासुदेवाद्यदुर्श्रेष्ठोवासुदेवो भविष्यति। १२६
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया॥

२ एपिग्राफिका इण्डिका Vol XXI में प्रकाशित

से १० वीं पीढ़ि में हुये थे। अतएव इस मत का प्रादुर्भाव काल वि सं १६२ से १८७ के मध्य हुआ माना जाता है। इसमें प्रत्येक आचार्य का औसतन काल २५ वर्ष माना जाकर ११ के लिये २७१ वर्ष मानने पर लकुलीश का काल ज्ञात हो जाता है। अगर यह क्रम नहीं मिलता तो लकुलीश की ऐतिहासिकता में संदेह बराबर बना ही रहता है। यह युग निसंदेह शिवोपासना की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था। कुषाण एवं भारशिवशासकों का उदय भी लगभग इसी काल में हुआ था।

शिव का यह अवतार गुजरात में कायावरोहण (कारवां) नामक स्थान पर हुआ है। एकलिंगजी के वि सं० १०२८ के लेख में वर्णित है कि भगवान का यह अवतार भृगुकच्छ देश में हुआ जहां मेकला की पुत्री नर्मदानदी बहती है और जहां भृगुऋषि तपस्या[8] करते थे। सोमनाथ मन्दिर की वि० सं० १२७४ की प्रशस्ति के अनुसार यह अवतार उल्का के पुत्रों को अनुग्रहित करने के लिये हुआ[9] था। शिलालेखों में प्राय भगवान शिव के स्वयं लकुल लेकर अवतरित होने का उल्लेख है जब कि पुराणों में मरे हुये ब्राह्मण के शरीर में प्रविष्ट होने का। पाशुपत सूत्राणि पर राशिकर भाष्य में भी लिखा है कि ब्राह्मण काय में मनुष्य रूप से आकर इन्होंने सबसे पहले उज्जैनी जाकर प्रथम उपदेश कुशिक को दिया।[10]

इतिहास

इस सम्प्रदाय में मुख्यरूप से प्रारम्भ में ४ प्रकार के आचार्य[11]

---

८ एकलिंग मंदिर के वि० सं० १०२८ के लेख की पंक्ति सं ७। पाडली के लेख वि० सं० ११७१ की पंक्ति सं० ८ और ९

९. अनुग्रहीतु च शिव भृगुकच्छसुकृतमुत्तमनिवासमवाप पितु ।

१० अवतरवत्वारः पाशुपतविशेषचर्याय ।
लकुलिशकार्यकौश्यमभेषा इति तदठ सत ॥१६॥

११ मनुष्यरूपीभगवान् ब्राह्मणकायमास्थायकायावतरणे अवतीर्ण इति——————यथा परम्परामुज्जयिनीं प्राप्त——————अतो च प्रबोधितः कुशिक भगवान्व्याप्तस्य पृष्ठवान्" पाशुपत सूत्राणि राशिकर भाष्य पृ ४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, के वर्ष ६१ पृ ११७ से उद्धृत)

ी प्रमुख हुये थे (१) कुशिक (२) गार्ग्य (३) कौरुष और (४) मैत्र ।। हरिभद्रसूरि ने "षटदर्शन समुच्चय" में १८ नाम दिये हैं। इसी प्रकार का उल्लेख कौडिन्य रचित पंचार्थभाष्य की भूमिका में भी उपलब्ध है। कुछ नामों में हेरफेर अवश्य है। मुनि कान्तिसागर जी द्वारा रचित एकलिंगजी के इतिहास पृ ४०० पर इनकी नामावली इस प्रकार प्रस्तुत की है:—

(१) नकु लेश (२) कुशिक (३) गर्ग (४) मैत्रेय (५) कौरुष (६) ईशान (७) पारगार्ग्य (८) कपिलाण्ड (९) मनुष्यक (१०) कुशिक (११) अत्रि (१२) पिंगल (१३) पुष्पक (१४) बृहदार्य (१५) अगस्ति (१६) सन्तान (१७) राशिकर (१८) विद्यागुरु कौडिन्य।

लकुलीश मत के महन्त यौगिक क्रियाओं में विशारद माने जाते थे। ७ वीं शताब्दी के धौलमेश्वर महादेव झालरापाटन से प्राप्त होकर वराह की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख में "ईशान मुनि' का उल्लेख है जिसे लकुलीश के समान बतलाया है और उसके विशेषण स्वरूप'—"द्ट बालतिलकोदितिमवततपसः[१२] लिखा गया है। यह प्रतिमा वराह की है जो वैष्णव मत की है। इस पर तत्कालीन शैव साधु का नाम होना एक उल्लेखनीय घटना है। मूर्ति बनाने वाला इसका उपासक था। ईशान मुनि लकुलीश के १८ आचार्यों में से १ एक है। कल्याणपुर से राजा पद्म और केदारसिंह के समय के २ शिलालेख प्रकाशित हुये हैं। पहले लेख को श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल ने और इन दोनों को डी सी सरकार ने सम्पादित[१३] किये हैं। केदारसिंह वाले लेख में पाशुपत रुद्रकाचार्य और उसकी शिष्या वैष्णा का उल्लेख है।

---

१२ कनिंघम आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इंडिया Vol II पृ २६६।

१३ जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री Vol XXXV अक १ पृ ७३–७४। एपिग्राफिआ इण्डिया Vol XXXV पृ ५६।

प्रतिहार राजा भोज में प्रमाणराशि नामक पाशुपताचार्य को कुछ राशि पीढ़ियों को पहुंचाने को दी थी। कामां से प्राप्त हुये संवत् २९९ शिलालेख[14] में इसकी सूचना दी गई है। चामुण्डा और विष्णु के देवालयों की देखभाल का कार्य भी शैवाचार्यों को सौंपा गया था जो एक विशेष घटना है।

एकलिंग क्षेत्र—मेवाड़ में एकलिंग मन्दिर के मठाधीश बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। बाप्पारावल को राज्य प्राप्ति के लिये एक लिंग माहात्म्य और ख्यातों के अनुसार हारीत राशि नामक शैव साधु ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इन हारीत राशि की गुरु परम्परा आदि का विस्तृत विवरण एवं अन्य सम सामयिक वृतान्त उपलब्ध नहीं है। इनका उल्लेख भी १३ वीं शताब्दी के शिलालेखों[15] में ही आया है। यहां लकुलीश का मंदिर आज भी मौजूद है। इसमें वि स १०२८ का शिलालेख लग रहा है। शिलालेख की पंक्ति ९ में लकुलीश के अवतार लेने का उल्लेख है और १२ वीं पंक्ति में यहां के आचार्यों का उल्लेख है जो कुशिक शाखा के थे। वे लोग शरीर पर भस्म लगाते थे। वल्कों की छाल पहिनते थे और सिर पर जटा धारण करते थे। लेख के अन्त में कुछ साधुओं के नाम भी दिये हैं यथा—सुपूजित राशि सद्योराशि एवं विनिश्चित राशि। प्रशस्ति की रचना वेदांग मुनि के शिष्य आम्रकवि ने की थी। वेदांग मुनि का बौद्ध और जैन धर्मावलम्बियों से शास्त्रार्थ हुआ था। सौभाग्य से

---

१४ एपिग्राफिया इंडिया Vol XXIV पृ ३३१।
वर्णन इस प्रकार है २९९ फाल्गुण सु २ पुरा श्री भोजदेवेन ये
ह्म्मारसम्प्रसाधिता प्रमाण राशये तेन चामुण्डायस्य लेखिता।

१५ वि स १३३१ के चित्तौड़ के लेख के श्लोक ९ से ११। चित्तौड़ के १३३५ वि के लेख के ८वीं पंक्ति। इनमें भी स्पष्टतः हारीत राशि वर्णन है। श्री एकलिंगशिवसेवनतत्परश्रीहारीतराशिवंश संभूतमहेश्वरराशितच्छिष्य योगेश्वरराशि—————" शब्द अंकित है।

वल्कल आदि। वल्कल के एक शिष्य शिव मन्दिर ने ही पाशुपती का शिव मन्दिर बनाया था। चीरवा के १३३० वि के लेख में शिव राशि का उल्लेख है। इसके लिए "पाशुपततपस्विपति" विशेषण दिया है। यह महेश्वर राशि का शिष्य था जो पाशुपत सम्प्रदाय में हुए हारीत राशि की परम्परा में था।

महाराणा कुम्भा के लेखों में एकलिंग माहात्म्य एकलिंग पुराण और रायमल के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति आदि १५ वीं शताब्दी की सामग्री में इन आचार्यों की उपेक्षा की गई जो एक विचारणीय विषय है। शिलालेखों से प्रतीत होता है कि वि० सं० १५१२ में नरहरि नामक मठाधीश ने भौतुका मठ का विस्तार किया था और वि सं० १६०२ में धर्माचार्य के मठाधीश होने का उल्लेख मिलता है। अतएव प्रतीत होता है कि उस समय में आचार्य वापस यहां आ चुके थे। एकलिंग माहात्म्य आदि में वर्णित है कि महाराणा कुम्भा के साथ शिवानन्द नामक शैवाचार्य के सम्बन्ध ठीक नहीं होने से आचार्य रुष्ट होकर काशी चला गया था। कालान्तर में नरहरि वापस आया हो किन्तु ये पाशुपत मठाधीश अधिक समय तक नहीं रह सके और इनकी जगह दण्डी स्वामी साधु यहां लाये गए और व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन किया गया। एक शिलालेख से प्राप्त शिलालेखों में इन आचार्यों के विषय में विस्तार से क्रमबद्ध वर्णन नहीं मिलता है।

मेनाल क्षेत्र—मेनाल क्षेत्र माण्डलगढ़ सब डिवीजन में है। इस क्षेत्र में चौहान कालीन कई शिव मन्दिर आज भी विद्यमान हैं। जाहोरी के भूतेश्वर शिवालय में वि० सं० १२११ का एक शिलालेख[१८] उत्कीर्ण है जिसमें चौहान राजा वीसलदेव के शासनकाल में पाशुपताचार्य विश्वेश्वर प्रज्ञ द्वारा सिद्धेश्वर मन्दिर का मण्डप बनवाना वर्णित है। मेनाल के मठ में वि० सं० १२२६ का एक शिलालेख लग रहा है जिसमें महा-

---

१८. राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट अजमेर १९२१ पृष्ठ ९। वरदा वर्ष ११ अङ्क १ पृ० ९

मुनि द्वारा मठ के[20] निर्माण का उल्लेख है। इसी समय के बोड़ के शिलालेख में पाशुपताचार्य प्रमासराशि का उल्लेख है। यहां के वि० सं० १२२६ के एक लेख[21] में इसी प्रमासराशि द्वारा मठ बनाने का भी उल्लेख है। जिसमें बाहर से आये हुये कापालिक तपस्वी ठहर सकें। कापालिक के स्थान पर कापालिक पाठ भी पढ़ा जाता है। विश्वास किया जाता है कि मेवाड़ के साधु प्रारम्भ में अजमेर के चौहान शासकों के गुरु थे। यहां अल्लटकालीन जोगी नामक एक साधु का उल्लेखनीय वर्णन मिलता है। इसका नाम एक लिंग मंदिर स्थित लकुलीश मंदिर में भी खुदा हुआ है। मांडलगढ़ के चंडेश्वर शिवालय में भी इसका नाम अंकित है। इसके आगे वि० सं० १४५० भी खुदा हुआ है।[22] चित्तौड़ के मन्दिरों में भी इसका नाम खुदा मिलता है। कोटा क्षेत्र के रामगढ़ भंडदेवरा कृष्णविलास आदि के मन्दिरों में भी इसका नाम खुदा हुआ है।[22A] मेवाड़ के वि० सं० १३१४ पोष वदि १२ सोमवार के एक अभिलेख में कड़व जोगी और अम्बा जोगियों[23] का उल्लेख है। कड़व महन्त[24] का उल्लेख और भी कई लेखों में मिलता है। उदयपुर संग्रहालय में संग्रहित लकुलीश सम्प्रदाय के १५वीं शताब्दी के एक लेख से उस समय तक इस सम्प्रदाय की विद्यमानता प्रतीत होती है। यह लेख मेवाड़ क्षेत्र से ही प्राप्त हुआ है।[25] इस लेख का प्रारम्भ 'जयजय लिंगुपादपराय' से होता है। कालान्तर में यह मत इस क्षेत्र से विलुप्त हो गया था। इस प्रकार १०वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक इस मत के कई शिव मन्दिर इस क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं।

---

२० "कारितं मठमतुलम कली मानाह्यमुनिनाम्नाह्यय", वीर विनोद भाग १ में प्रकाशित

२१ वरदा वर्ष ८ अङ्क ४ में श्रीरत्नचन्द्र अग्रवाल द्वारा सम्पादित

२२ वरदा वर्ष ६ अङ्क ४ पृष्ठ ६

२२A. रिसर्चर भाग III एवं IV पृ० १७ का फुटनोट २६

२३ महाराणा कुम्भा पृष्ठ १८८ फुटनोट ६६

२४ " सं १३१४ वर्षे पोष वदि १२ सोमे कड़व जोगाम्बा..." (उपरोक्त)

शेखावाटी में हर्षनाथ के मन्दिर के वि स १०३० के शिलालेख में इस सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री[26] उपलब्ध है । शिलालेख में अनन्त गोत्र के साधुओं का उल्लेख है जो पाशुपत की शाखा के थे । इस लेख की पंक्ति सं २२ में विश्वरूप नामक पुत्र को 'पञ्चार्थलाकुलाम्नाये' कहा गया है । इसका शिष्य भस्सट हुआ । यह रणपल्लिका ग्राम में रहता था और 'आम्नायिकलाकुलाम्नाय' का मानने वाला था । प्रस्तुत लेख की २१वीं पंक्ति में इसे आजन्मब्रह्मचारीदिगम्बरवसन संयमात्मातपस्वी कहा गया है । इससे पता चलता है कि यह शैव साधु भी नग्न रहता था । इसकी २६वीं पंक्ति में भस्सट के शिष्य भावचोत का उल्लेख है जो पाशुपत मत में एक सिद्ध था । इस प्रकार प्रतीत होता है कि हर्ष-नाथ का यह शिवालय इन पाशुपत साधुओं का केन्द्र स्थल रहा था । नाडूल के लेख में वर्णित है कि नीलकण्ठ[27] शिव का मन्दिर गामण्ड स्वामी नामक एक सब साधु ने स्थापित किया था । बमाप के लेख में भी भग्ग भट्टारक नामक साधु का उल्लेख है जिसने शिव मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई थी ।[28] अर्थूणा (बांसवाड़ा क्षेत्र में भी लकुलीश की प्रतिमायें मिली है । यहां के मण्डलेश्वर शिवालय में जो वि स ११३६ में परमार राजा चामुण्डराज के द्वारा बनाया गया था द्वार पर लकुलीश की प्रतिमा बनी है ।[29] यहां के साधुओं का वर्णन नहीं मिलता है ।

आबू के वि सं० १२६५ के एक लेख में शैवाचार्य केदारराशि का उल्लेख है । इसे 'अमलबलगोत्रप्रोद्यतानां मुनीनामजनि तिलक स्वरूपस्य केदारराशि' कहा गया है । इसी लेख की १५वीं पंक्ति में 'धान्ता' नामक ब्रह्मचारिणी का उल्लेख है । इससे पता चलता है कि स्त्रियां भी पाशुपत सम्प्रदाय में दीक्षित हो सकती थी ।[30] आबू के एक

---

२६ एपिग्राफिआ इण्डिका भाग II पृ० १२१ । वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० ६
२७ इण्डियन एण्टिक्वरी भाग LIX पृ० २१
२८ उक्त भाग LX पृ० १७५
२९ बांसवाड़ा राज्य का इतिहास पृ
३० वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० १०

अन्य वि०सं० ११४२ के शैव मठ के एक लेख में भावागिन और उसके शिष्य भावब्रह्मकुर का उल्लेख है जो पाशुपत साधु थे। मारवाड़ में चोह न नामक स्थान में तीन मन्दिरों के भग्नावशेष है। इनमें से एक पर क ल्हणदेव चौहान के समय का लेख है। एक ११वीं शताब्दी के कद्-शीष मन्दिर का वि० १२६५ पौष सुदि ६ के दिन उत्तमराशि के शिष्य धर्मराशि द्वारा जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख वहां लगे शिलालेख में मिलता है।[३१]

मध्यप्रदेश के झालावाड़ जिले की सीमा से लगे इन्द्रगढ़ से वि सं ७६७ का शिलालेख मिला है। इसमें भी पाशुपत सम्प्रदाय के विनीतराशि और दानराशि के नाम है।[३२]

गुजरात से इस सम्प्रदाय के सैकड़ों शिलालेख और असंख्य मूर्तियां मिली है। वहां कई आचार्य हुये है जो चालुक्य और बाघेला राजाओं के गुरु थे। शिलाप्रशस्ति में इस सम्बन्ध मे विस्तार से लिखा हुआ है। इन आचार्यों में से कुछ नाम ये है श्री कच्छुकाचार्य श्री त्रिकार्य भावबृहस्पति विश्वेश्वरराशि बृहस्पतिराशि त्रिपुरान्तकराशि आदि।[३३]

दक्षिणी भारत में भी यह सम्प्रदाय खूब फला। वहां चिल्लुक नामक एक साधु को तो पाशुपताचार्य लकुलीश का अवतार तक कहा गया है। इस सम्बन्ध में कई शिलालेख वहां मिले है जिनमें 'लकुलिन' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

इन शिलोत्कीर्ण प्रशस्तियों में वर्णित आचार्यों के अतिरिक्त वामध्वज नामक एक पाशुपताचार्य द्वारा विरचित ग्रन्थ भी मिले है। अगर चन्द नाहटा ने राजस्थान भारती में इस सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है।

उपमिति भवप्रपञ्च कथा के प्रस्ताव ४ प्रकरण १२ में जो विवरण प्रस्तुत किया है उससे पता चलता है कि उस समय कई पाशुपतों की

---

३१ जोधपुर राज्य का इतिहास पृ०

३२ एपिग्राफि का इण्डिका भाग XXXII पृ० ११६

३३ शिला प्रशस्ति की पंक्ति १८ १६,२० और २१ में कार्तिक राशि का नाम है जिसे "गार्ग्य गोत्राभरण' लिखा है। इसका शिष्य वाल्मिकी राशि था और उसका त्रिपुरान्तक।

धारायें थी। ये दोनों से भिन्न थी। ये पाशुपत शैव पाशपत दिगम्बर संत कर्म मारा (कमर ऐ माणी) आदि थे। हरिभद्र सूरि के षट् दर्शन समुच्चय के अनुसार कुछ पाशुपत विवाह करते थे और कुछ अविवाहित होते थे। गुजरात के साधु विवाह करते थे। शिला प्रशस्ति में इसका विस्तार से उल्लेख है।

लकुलीश प्रतिमा

लकुलीश की मूर्ति में शिव को एक हाथ में बिजौराफल और दूसरे हाथ में लकुल लेकर पद्मासन में बैठे हुये घुटनों से बच्चों सहित उत्कीर्ण किया जाता है। लकुलीश उर्ध्व रेता होता है अतएव लिंग का चिन्ह भी बना रहता है। मूर्तिकला की दृष्टि से लकुलीश का यह वर्णन अत्यन्त प्रसिद्ध है.—

> लकुलीश उर्ध्वमेढं पद्मासन सुसं स्थितम्।
>
> दक्षिणे मातुलिंग च वामे दंडं प्रकीर्तितम्।

लकुलीश की यह प्रतिमा मुख्य द्वार के बाहर उत्कीर्ण होती है। साधारणतया लकुलीश का मंदिर शिव मंदिर से अभिन्न होता है। अन्तर केवल द्वार पर खुदी हुई लकुलीश की मूर्ति से ही प्रतीत होता है।

भारतीय मूर्ति कला के इतिहास में लकुलीश की प्रतिमा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। दूर से जैन तीर्थंकरों-सी प्रतीत होने वाली यह प्रतिमा विशेष आकर्षण का विषय बनी रहती है। जिस प्रकार पाशुपताचार्यों ने शैव और विष्णु का समन्वय करके अर्द्ध नारीश्वर की कल्पना की थी उसी प्रकार लकुलीश की प्रतिमा की कल्पना में उन्होंने शैव और जैन सिद्धान्तों का समन्वय किया प्रतीत होता है। इस प्रतिमा में दण्ड बिजौराफल और लिंग चिन्ह ही इसे जैन प्रतिमा से भिन्न सिद्ध करते हैं। कारवां माहात्म्य नामक ग्रन्थ के ४ थ अध्याय की परिसमाप्ति पर लकुलीश के लिये 'तीर्थंकर' शब्द भी प्रयोग में किया गया[१४] है। अतएव प्रतीत होता है कि इस मूर्ति की रचना करते समय कलाकारों के सम्मुख

---

१४ आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट सन् १९०६–७ पृ २८० महा-पाशा भुम्मा प १८६

न्य अवश्य रहा था। तिलस्मा की मूर्ति में हाथ में
जगह मातृलिंग है। मांडलगढ़ के मन्दिर की मूर्ति
ारख बंधा है। तिलस्मा की उपरोक्त मूर्ति जैन
सी दिखाई[३४] पड़ती है। हाल ही में भी रतनचन्द्र
ा और शिव मूर्तियां ऐसी कुछ निकाली हैं जिन
की तरह श्रीवत्स का चिन्ह भी बना हुआ है।
नाथद्वारा के पास बहु देवालय की आश्चर्य शिव
ोद्भव कुण्ड के पास की जटाधारी शिव प्रतिमा
ो लकुलीश की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय

प्रतिमाओं में दो की जगह चार हाथ भी
में झालावाड़ कोटा संग्रह तथा की लकुलीश
से उल्लेखनीय है। झालावाड़ वाली प्रतिमा
ाप्त हुई थी। कन्सुआ के मालव संवत ७९५
र में भी चतुर्मुख लकुलीश प्रतिमा का उल्लेख
य में एक पार्श्व किन्नरियों से युक्त चतुर्बाहु वाली
नके सिर पर जटाजूट बना हुआ है। इसी प्रकार
शिखरों पर ब्रह्मा और विष्णु के साथ चतुर्बाहु
ान हो रहा है। चित्तौड़ के सूर्य मन्दिर में भी
ोश प्रतिमा उल्लेखनीय है। कुम्भश्याम के मंदिर में
प्रतिमा अपने ढंग ि विशिष्ट प्रकार की है।
के केवल २ ो और व्याख्यान मुद्रा
ूमे हाथ में बिजोरा।
ं बहुत ही कम
विवाह शिव

या १३६८-६९ ई० में घटित होने से दत्त महोदय कल्पना करते हैं कि खेता और रणमल के मध्य युद्ध इसके पश्चात् हुआ [3] होगा। इसके साथ ही साथ वे यह भी कहते हैं कि मालवे के सुल्तान अमीशाह के साथ भी खेता का युद्ध होना प्रसिद्ध है जो वि० सं० १४५२ (१४०५ ई०) तक जीवित था। *अतएव अमीशाह की निधन तिथि को ही खेता की निधन तिथि मानी जानी चाहिए।*

श्री दत्त का आधार काल्पनिक तर्क है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के रचनाकाल के लगभग ही विरचित किये गये सोम सौभाग्य [4] काव्य में

(३) कुंभलगढ़ प्रशस्ति का मूल श्लोक इस प्रकार है—

'मात्यन्मातम्महेभप्रवरकरछुतिखिप्तराजन्यभूपो।
यं खान' पत्तनेषो जफर इति समासाद्य कुष्ठीबभूव ॥
सोम मस्को रए।।रि' सकुकुलनिताररसबबम्यदीप'।
कारागारे यदीये नृपतिमतयुते सस्तर नानि क्षेमे ॥ १६६ कु० प्र
वीर मीरएमल्ल दृशिवग ख्क्समापाकनवीनर्क।
स्फुरदवृगुजरमण्डमखरमसी कारागृहे जीवकृत् ॥२३॥ की० प्र०

ईडर के राव रणमल्ल की वीरता में सन्देह नहीं किया जा सकता है। समसामयिक जैन ग्रन्थों में "संग्रामसंग्रासितनैक पार्थी—दूरेपुरेवाररणमल्ल भूप" वर्णित है। रणमल्ल काव्य में उसका राजस्थान जीवना वर्णित है। साम सौभाग्य काव्य में जो महाराणा कुंभा के शासन काल में विरचित किया गया था के ७ वें सर्ग के श्लोक सं० ५ में भी प्रसंगवश ऐसा ही उल्लेख है।

(४) श्री बाचकोत्तमपदं बाणरम्बिवाह संवत्सरे (१४९०) विमतमत्सर वित्तवृत्तं। अस्मै' समस्त समम्नुत मबाहमिताख्ये साचैन सम्मपुरि मानिव सैन तस्य ॥१४॥

श्री मेवपाट विस्टाधिपपूजनुत्स्य विस्०ीए देवकुल संकुलमध्य मापे। श्री क्याद देवकुलपाटकपत्तने ते श्री बाचका समागमन् मुनिगु व युक्ता ॥१५॥

श्री लता भू मिपति यति मान्यवदान साधु यो रामदेवसचिवोत्तम कण्ठभूषा'। श्री मद्गुरोर्धमभूवं संमुखा महेम्या जग्मु विनू मित देहदेवा' ॥१७॥ सौम सौभाग्य काव्य पंचमसर्ग

वि० सं० १४५० में ही मेवाड़ में महाराणा लाखा को शासक के रूप में वर्णित किया है। उस समय मेवाड़ राज्य का प्रधान रामदेव नवलखा था। इसने आचार्य सोम सुन्दरसूरि का देलवाड़ा में स्वागत किया था। उस समय राजकुमार कुंभा मुख्यमंत्री का कार्य करता था। इस ग्रंथ में वर्णित सारी घटनाएं वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ के महावीर जैन मंदिर की प्रशस्ति और 'गुरु गुण रत्नाकर काव्य" से मिलती हैं। सोम सौभाग्य काव्य में जब वि० स० १४५० में ही मेवाड़ में महाराणा लाखा को शासक के रूप में विद्यमान होना वर्णित कर दिया गया है, तब वि० स० १४६२ तक उसके पिता के जीवित रहने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

रामदेव नवलखा और इसके पुत्र सारंग और सहणपाल कई वर्षों तक मेवाड़ में प्रधान के पद पर रहे थे। रामदेव महाराणा खेता के समय से प्रधान था। करेड़ा के जैन मंदिर का वि० सं० १४११ का विज्ञप्ति लेख इस [5] सम्बन्ध में द्रष्टव्य है। राणा लाखा ने इसे बहुत सम्मानित किया था। इसे जन लेखों में 'श्रीधर्मोत्कृष्टमेदपाटसचिव श्रीरामदेव' लिखा मिलता है। इसके और उसकी पत्नी मेला देवी के कई शिलालेख मिलते हैं। इसके पुत्र सहणा का उल्लेख महाराणा कुंभा के मुख्यमंत्री के रूप में वि० सं० १४९१ के लेख में है। इसके परिवार के अन्य सदस्यों का उल्लेख आवश्यक बृहद्वृत्ति की प्रशस्ति और करेड़ा के मंदिर के एक लेख में है। दूसरे पुत्र सारंग का उल्लेख वि सं १४८४ के नागदा की अद्भुतजी की मूर्ति के लेख में है। इसी प्रकार सोम सुन्दरसूरि के मेवाड़ से कई लेख मिले हैं। वे मेवाड़ में प्रथम बार वि० सं १४५० में आये थे। अतएव दोनों ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और सोम सौभाग्य काव्य में उल्लेखित घटनाओं की भी इससे पुष्टि होती है।

---

(५) वि० सं० १४४६ में इस विज्ञप्ति लेख की प्रतिलिपि कपड़े पर की गई थी,
संवत् १४४६ वर्षे श्री दीपोत्सव दिवसे समर्थितमिदं ॥श्री॥ मूल विज्ञप्ति लेख में रामदेव का उल्लेखनीय वर्णन मिलता है यथा 'श्रीकरहेटास्य श्रीपार्श्वनाथजिनवरसपरिचर्याप्राप्तसारवरेण सुधाकरेणेव सकलगुरुजनसमसहृदयाह्लादकरणस्वसम्बन्धोदयवशवर्तीम् तराज्यप्रधानसाधुरामदेव श्रावक वरेण——

इसके अतिरिक्त कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक १६९ एवं कीर्ति स्तंभ प्रशस्ति के श्लोक २१ (जो पृष्ठ फुटनोट सं० १ में दिये हैं) में जो वर्णन है उसका सार यही है कि यहां शत्रु को प्रबल घोषित किया गया है। यहां प्रशस्तिकारों का उद्देश्य खेता की वीरता बतलाने के लिये उसके द्वारा हराये गये शत्रुओं को भी अत्यन्त प्रबल वर्णित किया है। यह अलंकारिक वर्णन है। अगर यह समसामयिक होता तो उल्लेखनीय हो सकता था। ये दोनों प्रशस्तियां लगभग ५० वर्ष बाद की हैं। केवल मात्र इन दो श्लोकों के आधार पर ही हम खेता की निधन तिथि इतनी पीछे नहीं रख सकते हैं। सोम सौभाग्य काव्य में जब वि० सं० १४५० में लाखा को मेवाड़ का शासक वर्णित किया है फिर वि० सं० १४५२ के बाद तक उसके पिता खेता को शासक रूप में माना जाना अर्थहीन है।

खेता की निधन तिथि वि० सं० १४५२ मानने से मोकल की जन्म तिथि वि० सं० १४५५ ५६ के लगभग मानी गई है जो किसी भी स्थिति में सही नहीं हो सकती। मोकल की पुत्री लालाबाई वि० सं० १४८० के पूर्व विवाह योग्य हो चुकी थी और गागरोण के शासक अचलदास खीची को ब्याह दी गई[1] थी। अतएव अगर मोकल की जन्म तिथि १४५५ ५६ में मानते हैं तब १४८० में कभी भी उसकी विवाह योग्य पुत्री नहीं हो सकती। यह तभी सम्भव है जब कि मोकल की जन्मतिथि वि० सं० १४५२ के पूर्व मानी जावे। यह लाखा के शासन काल मे जन्मा था।

अतएव इन सब घटनाओं पर विचार करते हुये यह मानना पड़ेगा कि महाराणा खेता की निधन तिथि वि० सं० १४५२ नहीं हो सकती। यह तिथि वि० सं० १४३९ के लगभग ही होनी चाहिये।

---

(१) मेरा लेख 'महाराणा मोकल की जन्मतिथि'' राजस्थान भारती ८, अंक ४ में प्रकाशित द्रष्टव्य है।

[वरदा में प्रकाशित]

पूर्व मध्यकालीन जैसलमेर | १७

जैसलमेर क्षेत्र ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। हाल ही में हुये सर्वेक्षण के अनुसार लूणी नदी के तटवर्ती भागों में प्रस्तर कालीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं। सिंधुघाटी सभ्यता के अवशेष हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के अतिरिक्त बीकानेर में कालीबंगा और सौराष्ट्र में लोथल नामक स्थान से भी मिल चुके हैं। अतएव आश्चर्य नहीं कि उत्खनन से इस क्षेत्र में भी उक्त सभ्यता के चिन्ह मिल जावें। स्मरण रहे कि मोहन जोदड़ों में ऊँट के अवशेष भी मिले थे। अतएव उनका भी इस रेगिस्तान से अवश्य सम्पर्क रहा होगा। पौराणिक काल में इस क्षेत्र में कौन शासक हुये थे इसका प्रामाणिक वर्णन उपलब्ध नहीं है।

विद्वानों की मान्यता है कि पश्चिमी राजस्थान का कुछ भाग जिसमें जैसलमेर भी सम्मिलित है यूनानी राजा सेल्यूकस के राज्य के अन्तर्गत था एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ संधि हो जाने पर यह मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इस क्षेत्र पर जाट और मेदों का अधिकार लम्बे समय तक रहा था। ये दोनों एक दूसरे के पड़ोसी थे और बराबर एक दूसरे से संघर्ष किया करते थे। कभी जाट विजय प्राप्त करते तो कभी मेद।[1] यहीं से ये जातियां कालान्तर में राजस्थान के अन्य भागों और गुजरात में चली गयी प्रतीत होती हैं।

भाटियों का प्रारम्भिक इतिहास

जैसलमेर के भाटी राजा यदुवंशी हैं। इनकी मान्यता है कि द्वारिका से यादवों का एक दल काबुल की तरफ चला गया जहां से

(१) इलियट एण्ड डोसन हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग १ पृ ५१९-२१

७ वीं शताब्दी में वापस य लोग भारत की तरफ लौट आये। ख्यातों में कई राजाओं के नाम मिलते हैं। वंश के आदि पुरुष का नाम राजा रज बतलाया जाता है। इसके पुत्र का नाम गज था यह पंजाब के सीमा प्रान्त में शासन करता था। टॉड ने इसे कलियुगी संवत् १००८ बसाख सुदी ३ को होना माना है, परन्तु इसका कोई प्रमाणिक आधार नहीं है। इसका उत्तराधिकारी शालि वाहन नामक राजा हुआ। इसका भी पंजाब में स्यालकोट के आसपास अधिकार रहा माना जाता है। इसका पुत्र बलन्द हुआ। जिसके भट्टिक नामक पुत्र हुआ। वर्तमान भटिण्डा एवं हनुमानगढ़ (भटनेर) की स्थापना इसके द्वारा ही की गई[१] मानी जाती है जो कहा तक सही है कहा नहीं जा सकता है।

भाटियों का जैसलमेर क्षेत्र में बसना

राजा भट्टिक के पीछे ही भट्टिक संवत चला था। यह किसी बड़ी विजय का सूचक है। ख्यातों में मगधराज के राजस्थान में आकर के बसने का उल्लेख किया गया है। किन्तु भट्टिक के ही इस क्षेत्र में बसना मानना युक्तिसंगत है क्योंकि किसी संवत का प्रचलन किसी साधारण घटना से नहीं किसी विशेष विजय की परिचायक होना चाहिये। यह पश्चिमी भारत की विजय का सूचक ही माना जाना चाहिये। भट्टिक की तिथि वि० सं० ६८० ही ठीक प्रतीत होती है। इसका आधार यह है कि प्रतिहार राजा बाऊक के लेख में जो वि० स ८९४ का है अपने ९ वें पूर्वज सीलुक के लिये देवराज भाटी को जीतने वाला लिखा है। देवराज भट्टिक से ७ वीं पीढ़ि में हुआ था। प्रत्येक पीढ़ि के लिये २० वर्ष लेवें तो शीलुक का समय वि० सं० ८९४ और इसी हिसाब से भटिटक का समय ६८० के आसपास आ जाता है।[२]

भट्टिक के पीछे तनुजी उल्लेखनीय शासक हुये। तनुजी ने तन्नोट में राजधानी[४] स्थापित की ऐसा ख्यातों में लिखा मिलता है। ऐसा लगता है कि अरब आक्रमणकारी जुनद ने जस्स मंडल (जैसलमेर

(२ टॉड एनल्स एण्ड ए टिक्वीटिज भाग २ पृ १७१ से १०८

(३) गेहलोत राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ ६५१

(४) नैणसी की ख्यात (रामनारायण दूगड़) भाग २ पृ २६२

सन) पर भी आक्रमण किया था और यहां से मारवाड़ होकर उज्जैन गया था। इसके आक्रमण के फलस्वरूप राजनैतिक परिवर्तन हुआ और इसी का लाभ उठाकर भाटियों ने शक्ति एकत्रित करली हो। देवराज भाटी शक्ति सम्पन्न हुआ था। राज्य विस्तार के मामले में प्रतिहार राजाधीश्वर के साथ संघर्ष हुआ था जिस में इसकी हार हो गई थी[a]। ख्यातों में लिखा है कि इसके समय में राजधानी लोद्रवा स्थापित होगई थी।

देवराज के बाद सबसे उल्लेखनीय घटना मोहम्मद गजनी का आक्रमण है। जब मोहम्मद सोमनाथ पर आक्रमण करने जारहा था तब वह लोद्रवा के मार्ग से गया था। यहां के भाटी शासक ने उसका सामना भी किया था किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। उस समय बछराज नामक शासक हुआ था। इसका शासनकाल वि० स० १०९५ से ११०० तक माना जाता है।

वस्तुतः उस समय भाटियों को यवनों के आक्रमणों का निरन्तर मुकाबला करना पड़ रहा था। पोकरण के आदिनाथ के मंदिर के वि० स० १०७० के लेख में यवनों की रक्षा[?] करते हुये स्थानीय गुहिल और परमारों के बलिदान का उल्लेख है। अतएव प्रतीत होता है कि भाटियों को भी उस समय इनसे अवश्य संघर्ष करना पड़ रहा होगा।

विजयराव लांजा

विजयराव लांजा एक बड़ा प्रबल शासक हुआ था। ख्यातों में विजयराव नाम के २ शासक हुये हैं। एक के भट्टिक संवत् ५०१ ५४१, और ५५२ के शिलालेख[८] मिले हैं। इसके विरुद श्री परम भट्टारक महा

---

(५) राजस्थान थ्रू दी एजेज भाग १ पृ० १११

(६) तत श्रीगुहो जात पुत्रो दुर्वारविक्रम·
येन सीमा कृता निज्या स्त्र (म) वर्णीवल्लदेशयो· ॥
भट्टिक देवराजयो वल्लमण्डलपालकं
निपात्य तत्क्षण भूमौ प्राप्तवान् (चिह्न) छत्र चिन्हकम् ॥

(७) सरदार म्युजियम रिपोर्ट सन १९३१ प ८

(८) रिसर्चर वष III–Iv पृ० ५० से ५१

राजधिराज परमेश्वर मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह एक प्रबल शासक था। इसका विवाह गुजरात के चालुक्य शासक जयसिंह की कन्या से हुआ था। तब इसे "उत्तर भट किवाड़" कहा गया था।[9] जिसका अर्थ है कि भारत पर उत्तर की ओर से होने वाले आक्रमणों का दृढ़तापूर्वक मुकाबला करना। उस समय की राजनैतिक परिस्थिति से विदित होता है कि कुमारपाल चालुक्य ने पश्चिमी राजस्थान तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसने नाडोल के चौहान शासक आल्हण को किराडू दे दिया किन्तु कुछ वर्षों बाद उसे हटाकर उक्त प्रदेश वापस सोमेश्वर परमार को लौटा दिया था।[10] सोमेश्वर के किराडू के वि० सं० १२१८ के शिलालेख में लिखा है कि चालुक्य शासक की आज्ञा से उसने तणकोट जीतकर उसे वापस वहाँ के अधिकारी को लौटा[11] दिया। तणकोट का भू भाग उस समय भाटियों के राज्य में ही था। अतएव प्रतीत होता है कि जैसलमेर क्षेत्र पर कुमारपाल का कुछ समय के लिये अधिकार हो गया। उस समय या तो विजयराज शासक था अथवा इसका पिता। बहुत कुछ संभव है कि इसका पिता उस समय शासक रहा होगा। विजयराज ने चालुक्यों से सम्भवतः मुक्ति प्राप्त की और वास्तविक उत्तराधिकारी जैसल से राज्य छीन लिया। विजयराज का सबसे पहला शिलालेख भ स ५४१ का मिला है।[12] जिससे प्रतीत होता है कि वि० सं० १२११ के पूर्व यह अवश्य शासक हो चुका होगा। भटिटक संवत ५४१ वाले लेख में विजयराज

(९) भट किवाड़ उतराध रा भाटी भलण भार।
वचन रखो विजराज रो समहर बांधो सार॥
जोड़ा बड़ सुरताण रा मोड़ा वाम मजेज।
वाजै अजमी मोजदे आदम करे न अज॥

(१०) अरली चौहान डायनेस्टिज पृ० ११२

(११) म्यूजियम आफ मारवाड़ में छपा लेख।

(१२) राजस्थान यू थ्री ऐजेज vol I पृ० २८१ फुटनोट २। रिसर्चर vol III एवं IV पृ० ५। इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५० पृ० २३१

तालाब बनाने का उल्लेख है जो बालाजी कोट के पास है। दूसरे भटिटक संवत् ५४३ के लेख में चाहुली देवी के मन्दिर निर्माण का उल्लेख है। सं० ५५२ के लेख में विजयराज देव की पटरानी का उल्लेख [13] है। इसका उत्तराधिकारी भोज हुआ। इसके समय में मोहम्मद गोरी का आक्रमण हुआ। यह आबू जा रहा था मार्ग में इसने लोद्रवा पर आक्रमण कर भोज को हराया। सम्भवतः लोद्रवा नगर को जीतकर इसे जैसल को दे दिया। किराडू से प्राप्त वि० सं० १२३५ के एक लेख में तुरुष्कों द्वारा मन्दिर को भग्न करने का उल्लेख [14] मिलता है जिससे भी इसकी पुष्टि होती है।

जैसलमेर नगर की स्थापना

जैसलमेर नगर के निर्माण की तिथि ख्यातों में वि० सं० १२१२ दी हुई मिलती है। डा० दशरथ शर्मा इस तिथि को अप्रमाणिक मानते हैं और यह घटना विसं० १२३४ के पश्चात् [14] रखते हैं, जो ठीक है। वस्तुतः मुस्लिम आक्रांताओं के निरन्तर आक्रमणों के कारण सुरक्षित स्थान पर राजधानी स्थापित करने का विचार दृढ़ हुआ। नगर निर्माण का कार्य जैसल के पुत्र शालिवाहन के समय भी चलता रहा। इसका सबसे प्राचीनतम उल्लेख खरतरगच्छ पट्टावली में है जहां १२४४ वि के एक वर्णन में अन्य नगरों के साथ इसका भी नाम है [15] जैसलमेर भंडार में संगृहीत वि सं १२८५ की कृति धन्य शाली भद्र चरित्र में इस नगर का नाम दिया है जिससे प्रतीत होता है कि नगर निर्माण के शीघ्र बाद ही जैन धर्म का केन्द्र रहा होगा। [16] ऐसा कहा जाता है कि शालिवाहन

(१३) ग्लोरिज आफ मारवाड़ में छपा लेख।

(१४) राजस्थान थ्रू दी एजेज vol 1 पृ २८५। रिसर्चर vol III एवं IV पृ ५२

(१५) युग प्रधान गुर्वावली पृ ३४

(१६) तदाज्ञया सद्गुण सर्वदेवाचार्ये सम जेसलमेरदुर्गे। स्थितो गिरेवा स्व परोपकार हठो समाधि मनसोऽभिलाष्यम् (वि स १२८५ म पूर्ण मात्र लिखित धन्य शाली भद्र चरित्र ह० ग्र ब सं २०० जैसलमेर भंडार)

भाटियों के साथ संघर्ष हुआ था। इसकी मृत्यु नियाग्रो बलोच के साथ युद्ध करते हुए हुई थी। इसके बाद उसका पुत्र केलण उत्तराधिकारी हुआ जो केवल २ मास तक ही शासक रहा। इसे हटाकर इसके काका केल्हण ने राज्य ले लिया। केल्हण के बाद चाचगदेव अधिकारी हुआ। इसी समय[17] करण और जैतसिंह शासक हुये जो खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार वि सं १३४० में और १३५६ में क्रमशः शासक के रूप में विद्यमान थे।[18] कर्ण के बाद लखणसेन पुण्यपाल जैतसिंह और मूलराज नामक शासक हुए। ख्यातों में लखणसेन को गद्दी से उतारने का वर्णन मिलता है।

पहला और दूसरा शाका

इन आक्रमणों का उल्लेख फारसी तवारीखों में उपलब्ध नहीं है, किन्तु नैणसी के वृत्तान्त के अनुसार पहला आक्रमण अल्लाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में हुआ था।[19] पहले कमालुद्दीन को लगाया किन्तु उसे जब सफलता नहीं मिली तो उसने मलिक कफूर को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। उसने कमालुद्दीन की राय के अनुरूप घेरा नहीं डालकर सीधा दुर्ग पर आक्रमण किया इसके फलस्वरूप उसे भी सफलता नहीं मिली। सुल्तान ने पुनः कमालुद्दीन को ही लगाया जिसे ८०,००० सैनिक दिये। इस विशाल सेना के सामने स्थानीय राजपूतों की शक्ति नगण्य-सी थी। अतएव जैसलमेर वालों की हार हुई। मूलराज और रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हो गये। अब प्रश्न उठता है कि फारसी तवारीखों में इस आक्रमण का वर्णन क्यों नहीं मिलता है? यह अवश्य विचारणीय है। खजाइन उल फुतूह आदि कृतियां वस्तुतः समकालीन होते हुये भी सुल्तान के पक्ष की तरफ से तैयार की हुई

---

१७ 'सकलसंघपरिवारपरिकलितसमुदायागतप्रमुदित श्रीकर्णमहाराजैराहूताः श्रीजिनप्रबोधसूरिमुनीन्द्राः श्रीजैसलमेरौ सं १३४ फाल्गुनचतुर्मासके महता विस्तरेण प्रवेशकमहोत्सवः समपद्यत।"

१८ सं, १३५६ राजाधिराज श्री जैत्रसिंह विज्ञप्त्या मार्गशीर्षवदि-चतुर्थ्यां श्रीजैसलमेरौ श्री पूज्या समायाता।

१९ नैणसी की ख्यात भाग २ पृ २८८ से २९७

आफिसियल हिस्ट्री नहीं है। यह कार्य तो वस्तुत: कवीन्द्दीन को दिया गया था जिसने विस्तृत रूप से फतहनामा के नाम से इतिहास ग्रन्थ तैयार किया था जिसका उल्लेख ऊपर पद्मनी वाले लेख में किया जा चुका है।

डा० दशरथ शर्मा ने प्रथम बार इस आक्रमण की ऐतिहासिकता पर प्रकाश[20] डाला था। उन्होंने भट्टिक संवत पर एक विस्तृत लेख भी प्रकाशित कराया है। इसमें भट्टिक संवत के शिलालेखों पर विस्तार से भी प्रकाश डाला गया है। प्रसंगवश भट्टिक सं ६८५ (११६५ वि) के लेख में गायों और स्त्रियों की रक्षा करते हुए कई वीरों की मृत्यु[21] का उल्लेख है। अतएव आपकी मान्यता है कि यह घटना निर्सन्देह अलाउद्दीन के उक्त आक्रमण से ही सम्बन्धित है। डा दशरथ शर्मा की इस मान्यता को प्राय: सब ही विद्वान् ठीक मानते है। जैसलमेर के जैन मंदिरों के शिलालेखों के प्रसंगों पर, भी आपने अपने लेखों में ध्यान दिलाया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के वि स १४७३ के लेख की पंक्ति ४ में स्पष्ट रूप से जैसलमेर पर मुसलमानों के आक्रमण का उल्लेख है।[22] इसी प्रकार सम्भवनाथ मन्दिर के वि. स १४९७ के लेखों में भी प्रसगवश इसका उल्लेख है। वि स १४७३ वाले लेख में रत्नसिंह के पुत्र घटसिंह द्वारा जैसलमेर दुर्ग को मुसलमानों द्वारा लेने का वर्णन है।[23] संभवनाथ वाले लेख के अनुसार

२० इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XI पृ १४१। राजस्थान थ्रू दी ऐजेज vol I पृ ६८२।

२१ इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५९ के पृ १८ से २१।

२२. यत्प्राकारवरं विलोक्य बलिनो म्लेच्छाधनीपा अपि, प्रोद्यत्सैन्य सहस्र युग्मसहिता येह हि वास्वामिन:। अन्योपायवशा बलात् इति तै म वाति मानं निज तत् श्री जेसलमेरु नाम नगरं जीयाज्जगन्नायकं। पार्श्वनाथ मन्दिर का लेख पंक्ति सं. ४।

२३ श्री रत्नसिंहस्य महीभरस्य बभूव पुत्रो घटसिंह नामा।

था दूदा के बाद ही शासक हुआ था।[२४] अतएव प्रतीत होता है कि जैसलमेर पर लगभग २ आक्रमण हुये थे। पहला रतनसी के समय अलाउद्दीन का और दूसरा दूदा के समय हुआ। दूदा फीरोज का समकालीन था। डा. दशरथ शर्मा की मान्यता है कि इस के समय आक्रमण तुगलक शासकों की ओर से हुआ था।[२५] सम्भवतः फिरोजशाह तुगलक उस समय शासक रहा हो। दूदा ने रतनसी की मृत्यु के बाद दुर्ग पर मुसलमानों को हटाकर अधिकार किया था। यह घटना वि. सं. १३८१ के पूर्व घटित हो चुकी थी क्योंकि खरतरगच्छ पट्टावली में वहाँ स्थानीय शासकों का उल्लेख है।[२६] ख्यातों में लिखा मिलता है कि राठोड़ों ने भी कुछ समय के लिये दुर्ग अपने अधिकार में रक्खा था। दूदा के बाद जब दुर्ग मुसलमानों के हाथों चला गया तो उनके वंशजों के अधिकार में यह नगर फिर नहीं आ सका। यही कारण है कि प्रशस्तियों और कई ख्यातों में उसका नाम नहीं है। रतनसी के पुत्र घड़सिंह ने नगर का उद्धार किया और फिर से अपना अधिकार वहाँ स्थापित किया।[२७] इसके सम्बन्ध में नैणसी ने एक लम्बी कहानी दी है जिसके अनुसार घड़सिंह ने एक लम्बे समय तक बादशाह की सेवा में रह कर राज्य प्राप्त किया था।[२८] इसकी मृत्यु संवत ७१८ मिगसर सुदि ११ बुधवार को हुई थी। इसके साथ इसकी

य स्थिरवान् म्लेच्छसमवायान् विदार्य बलात्समाहसपरीन रिम्यः ॥७॥
उक्त लेख पंक्ति ५।

२४ 'तस्मिन् यादववंशे। राउल श्रीजयतसिंह भूमपाल, रतनसिंह राउल श्री दूदा राउल श्री घटसिंह......—

सम्भवनाथ मन्दिर का लेख पंक्ति सं० ७।

२५. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली vol XI पृ. १२९। राय श्याम ल. दी देवेन vol I पृ. ६८१-४

२६. श्री जैसलमेरमहादुर्गमध्ये निवासी सामान्यनरजनमध्ये महाराज देव्योत्पादनाम श्री राजलोक—नगरलोक महामिलापकेन....”

२७ उपरोक्त फुटनोट २१

२८ नैणसी की ख्यात भाग २ अध्याय २४

कई रानियां सती हुई थी। इन रानियों में सोढी मनुमा है, देवड़ी श्री रतना दे, कोहियानी, तारंमदे आदि के नाम[29] हैं। बहुत कुछ संभव है कि उसके ये विवाह जैसलमेर पर अधिकार कर लेने के बाद ही हुये हों।

घटसिंह के उत्तराधिकारी

घटसिंह के बाद मूलराज का पौत्र और देवराज का पुत्र केहर शासक हुआ था। शिलालेखों में देवराज का गायों की रक्षा करते हुए मृत्यु होना लिखा मिलता है।[30] यद्यपि सम्भवनाथ मंदिर के लेख की ७ वीं पंक्ति में घटसिंह के बाद देवराज का उल्लेख करते हुये उसके लिये लिखा है कि मूलराज पुत्र देवराज नाम्नो राजाऽभूवन्' लिखा है किन्तु यह देवराज वस्तुतः शासक नहीं हो सका था। घट सिंह के म० सं० ७१८ के सती के लेख मिले हैं। इनमें वर्ष केसरी को शासक के रूप में उल्लेखित किया है। म०सं० ७६६ (वि० सं० १४११) का लेख तेमडराय की पहाड़ी के पास स्थित तालाब पर लगा हुआ है) जिसमें केसरीसिंह को शासक के रूप में उल्लेखित किया हुआ है[31]। अतएव घटसिंह की मृत्यु के बाद कहरी ही उत्तराधिकारी हुआ था। यह बड़ा प्रतापी शासक था। म० सं० ७३१ के लेख में उसके कई विरुद दिये। इसने लम्बे समय तक राज्य किया था एवं अपने पुत्र केलहस को राज्याधिकार से वंचित कर दिया था[32]। जिसके पुत्र शाखा का एक

---

(२९) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९४९ पृ २३० ले० सं० २४ से ३०

(३०) मुलराजस्याविभूपेन्, तस्मात् वारक्षात्राण् श्रीवद्यमामित तस्माद् श्रीमूलराजक्षितिपाल सूनुर्यथाथ नामजनि देवराज॥८॥
पार्श्वनाथ का मंदिर का लेख पं० ६ और ७

(३१) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५१ के स।

(३२) ऐसी मान्यता है कि इसने अपनी शादि आपके पिता की इच्छा के विरुद्ध करली थी। अतएव इस राज्याधिकार से वंचित कर दिया था।

लेख वि.सं० १४७५ का बीकानेर के सग्रहालय में सुरक्षित है। इसे डा० दशरथ शर्मा ने राजस्थानी पत्रिका में प्रकाशित कराया है। केहरी का उत्तराधिकारी लक्ष्मणसी हुआ था। इसका राज्यारोहण ख्यातों में वि.सं. १४५१ बतलाया जाता है जो निसंदेह गलत है। केहर की मृत्यु वि.सं० १४५१ में हुई थी। इसकी मृत्यु पर रानी कपूरदे सती हुई थी। चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर इसी लक्ष्मण के समय बना था। इस मन्दिर मे २ शिलालेख लग रहे है। इन प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि निर्माण के समय इस मंदिर का नाम "लक्ष्मण विहार" रक्खा गया था।[१३] इसका निर्माण कार्य वि.सं. १४५९ मे शुरू किया गया था जो लगभग १४ वर्ष तक चला और वि.सं० १४७३ में पूर्ण हुआ। साधु कीर्तिराज ने इसकी प्रशस्ति की रचना की और वाचक जय सागर गणि ने इसे संशोधित किया और कारीगर धन्ना ने इसे खोदा। ओसवाल वंशीय रांका गोत्र के सेठ जयसिंह ने इसे बनाया। दूसरे लेख में रांका परिवार वालों का सविस्तार से उल्लेख है। इस परिवार वालों ने वि०सं० १४२५ में तीर्थयात्रा। वि० १४२७ में प्रतिष्ठादि महोत्सव और वि०सं० १४३६ और वि०सं० १४४६ में शत्रुञ्जय और उज्जयंत तीर्थों की यात्रायें की थी।[१४]

मन्दिर का निर्माण सागरचन्द्र सूरि ने जिनराज सूरि की सम्मति से जो खरतरगच्छ के थे, प्रारम्भ करवाया था। इस सम्बन्ध में ऐसा वर्णन मिलता है कि क्षेत्रपाल की मूर्ति को हटा देने से उसने अपने प्रभाव से जिनवर्द्धन सूरि का चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य) भंग करा दिया। समस्त खरतरगच्छ संघ ने एकत्रित हो करके नवीन व्यवस्था की थी।[१५] जैसलमेर चैत्य परिपाटियों में इस मंदिर की कई प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है।

---

(१३) श्रीलक्ष्मणविहारोयमिति विख्यातो जिनालयः । श्रीसक्ष्मणे नामानं वास्तुविद्यानुसारतः ॥२५॥ श्रीपार्श्वनाथमंदिर का लेख ॥

(१४) जैन लेख संग्रह भाग ३-लें० सं० २११३ पंक्ति सं० ८, ६, ११ और १२.

(१५) उपरोक्त भूमिका पृ १५.

मारवाड़ की ख्यातों में इसका राव रणमल के साथ संघर्ष होना वर्णित है। वस्तुस्थिति जो मारवाड़ की ख्यातों में वर्णित है एक पक्षीय है। फलोदी में वि॰ सं॰ १४८६ का शिलालेख लग रहा है इससे प्रकट होता है कि यह क्षेत्र जो कुछ समय पूर्व राठौड़ों के पास था भाटियों ने हस्तगत कर लिया था[३६]। इस प्रकार लखमण ने राज्य विस्तार कर कई परगने हस्तगत किये थे।

लखमणसी का उत्तराधिकारी बैरसी हुआ। ख्यातजी ने इसका राज्यरोहण संवत् १४९१ दिया है किन्तु यह गलत है। वि॰ सं॰ १४९३ के इसके शासनकाल के शिलालेख मिल चुके हैं[३७]। अतएव इसके राज्यरोहण की तिथि वि॰ सं॰ १४८९ से १४९३ के मध्य होना चाहिए। सम्भवनाथ का जैन मन्दिर और लक्ष्मीनारायण वैष्णव मंदिर इसके शासन काल में पूर्ण हुए थे। इसकी मृत्यु वि॰ सं॰ १५०५ वैशाख सुदि ११ सोमवार को हुई थी।[३८] एक अन्य लेख में यह तिथि जेठ सुदि ११ दी है। इसके उत्तराधिकारी चाचिगदेव का वि॰ सं॰ १५०५ का शिलालेख सम्भवनाथ मन्दिर की प्रसिद्ध तपपट्टिका पर लग रहा है।[३९] इस प्रकार बैरसी का शासनकाल २० वर्ष लगभग तक रहा प्रतीत होता है। संभवनाथ मंदिर में २ शिलालेख वि॰ सं॰ १४९७ के लगे रहे हैं।[४०] इन लेखों में जैसलमेर के राजाओं की वंशावली के साथ खरतर विधिपक्ष की पट्टावली दी हुई है। इसके बाद चोपड़ा जाती के श्रेष्ठियों की वंशावली दी हुई है। इस परिवार के हेमराज आदि ने वि॰ सं॰ १४९४ में मंदिर की रचना प्रारम्भ की थी और वि॰ सं॰ १४९७ में उसकी प्रतिष्ठा हुई थी[४१]। इस प्रतिष्ठा के समय ३०० प्रति-

---

(३६) जरनल बंगाल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी वर्ष १९१५ पृ॰ ९१

(३७) जैन लेख संग्रह भाग ३ ले॰ सं॰ २११४

(३८) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५२ के अं॰ पृ॰ ९१ ३७ और ३८

(३९) जैन लेख संग्रह भाग ३ ले॰ सं॰ २१४४।

(४०) उपरोक्त लेख सं॰ २११९।

(४१) तत संवत् १४९७ वर्षे कुंकुमपत्रिकाभि सर्वदेशवास्तव्य पर सहस्र श्रावकानामभ्य प्रतिष्ठा महोत्सव, सा॰ सिवार्ज

कार्यों की एक साथ प्रतिष्ठा हुई थी। महारावल बरीसिंह स्वयं भी इस कार्य में सम्मिलित हुआ था। प्रशस्ति की रचना सोमकुंवर नामक आचार्य ने की थी। भानुप्रभ गणि ने पत्थर पर इसे लिखा और शिवदेव शिल्पकार ने उसे खोदा। इस राजा के शासन काल में प्रतिलिपि की गई थी कल्पसूत्रसंदेहविषौषधिवृत्ति मिली है। इसके शासनकाल की विशेष उल्लेखनीय घटना जैसलमेर में ज्ञान भंडार की स्थापना है। इसने मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार राव जोधा को मंडोर का राज्य दिलाने में सहायता की थी।

बैरीसिंह का उत्तराधिकारी चाचिगदेव हुआ। इसके समय का सबसे पहला शिला लेख वि० सं० १५०५ सम्भवनाथ मंदिर की तप पट्टिका पर है। यह लेख बहुत लम्बा है। इसके ठीक ऊपर" रत्नमूर्तिगणि वा० जिनसेनगणि। प० हर्ष भद्रगणि। मेरु सुन्दर गणि। जयाकर गणि धोवदेव (गणि) उत्कीर्ण है। यह पीले पत्थर पर खुदा हुआ है। इसके शिरोभाग के दोनों ओर कुछ टूटे हुए हैं। इसकी लम्बाई २ फीट १ इंच और चौड़ाई १ फुट १२ इंच है। इसमें बांये तरफ २४ तीर्थंकरों के च्यवन जन्म दीक्षा और ज्ञान चार कल्याणक तिथियां कार्तिक बुदि से आश्विन सुदि तक दी हुई है। दाहिनी तरफ के भाग में तप के कोष्टे बने हुये हैं। नीचे ही नीचे १४ पंक्तियों का लेख खुदा हुआ है। इसमें खरतरगच्छ के उद्योतन सूरि से जिनभद्र सूरि तक के आचार्यों के नाम दिये हैं। पंक्ति सं० २ में संखवाल गोत्र के श्राविका द्वारा तप पट्टिका बनाने का उल्लेख है।[42] आबू में भी ऐसी तप पट्टिका लगी हुई है। वि सं० १५०१ में चन्द्रप्रभ स्वामी का मन्दिर खींवा भणशाली ने बनवाया था।

जैसलमेर दुर्ग मे वि०सं० १५१२ का लेख मन रहा है इसमें अमर कोट के शासकों का हराने का उल्लेख है लेकिन इस लेख

कारित, तप च मद्युति श्री जिनभद्रसूरिभि. श्री संखवाल प्रमुखविवानि ३३३ प्रतिष्ठानि

(४२) जैन लेख सग्रह भाग ३ ले, सं० २१५४

की तिथि गलत है। यह घटना चाचिगदेव के उत्तराधिकारी के शासन काल में घटित हुई थी। वि. सं० १५१८ के बाद लेख पार्श्वनाथ मंदिर के रंग मंडप में लग रहे हैं।[43] उसमें नन्दीश्वर पट्ट बनाने का उल्लेख है, उसके अतिरिक्त और कुछ मूर्तियों के लेख भी इसी संवत् के यहां लग रहे हैं।[44] संभवनाथ मंदिर में भी वि.सं० १५१८ का ही लेख उपलब्ध है जिसमें चोपड़ा गोत्र के श्रेष्ठि द्वारा शत्रुञ्जय और गिरिनार पट्ट स्थापित करने का उल्लेख है।[45] इस चाचिगदेव की मृत्यु किसी शत्रु के साथ युद्ध करते हुई थी। टॉड ने मुलतान के लंगा राजा के साथ युद्ध करते हुये मरना लिखा है। किन्तु यह गलत है। वास्तव में इसकी मृत्यु सोढों के साथ युद्ध करते हुये हुई थी। यह घटना वि.स० १५२४ के पूर्व हो गई थी।

उसका उत्तराधिकारी महारावल देवकर्ण हुआ। इसने राज्य गद्दी पर बैठते ही सोढों से अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया। मारवाड़ और उत्तरी राजस्थान में इस समय बड़ा परिवर्तन हो रहा था। राठौड़ शक्ति एकत्रित कर रहे थे और बीकानेर राज्य की स्थापना भी इसी समय हुई थी। रावल देवकर्ण के समय बीकाने बीकानेर पर आक्रमण किया। जैसलमेर के इतिहास के अनुसार गढ़ के किवाड़ और तराजू मूर्[illegible] में आये। कहा जाता है कि इसे बलोचों के विद्रोह दबाने में अधिक शक्ति लगानी पड़ी। शिव तहसील के गांव के लिए जोधपुर वालों से भी संघर्ष हुआ था। पोकरण और फलौदी जोधपुर वालों ने ले लिये। इसका शासनकाल सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्व पूर्ण है। इस समय कई ग्र थ लेखन और महत्वपूर्ण निर्माण कार्य हुये। जैसलमेर भंडार में उपलब्ध निम्नांकित कुछ ग्र थ उल्लेखनीय हैं।[46]

(१) कलापक व्याकरण वृत्ति। इस ग्र थ की प्रतिलिपि वि.सं. १५२६ माघ सुदी सप्तमी को पूर्ण की गई। प्रशस्ति में खरतरगच्छ के जिनदत्त

---

(४३) उपरोक्त के स० २११६ से २११९

(४४) जैन सत्यप्रकाश वर्ष ८ अंक ४ पृ १०९

(४५) जैन लेख संग्रह भाग ३ सं० २१४०

(४६) जैसलमेर ताड़पत्रीय भंडार सूची पृ २०६

जिनचन्द्र जिनेश्वर जिनधर्म और जिनवल्लभ नामक साधुओं का उल्लेख है। इसे देवभद्र नामक एक साधु ने पूर्ण किया था।

(२) त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र महाकाव्य (दशमपर्व)। इसमें ११३ पत्र हैं और इसकी प्रतिलिपि भी वि सं १५३६ में उक्त देवभद्र ने पूर्ण की थी।

(३) कर्पूर मंजरी नाटिका। वि सं० १५३८ माघ शुक्ला १५ को उक्त देवभद्र ने इसकी प्रतिलिपि की थी। इसकी एक अन्य और प्रति है जिस की भी उक्त आचार्य द्वारा जो विसं १५३८ श्रावण सुदि ७ को प्रतिलिपि की गई।

वि स १५३६ में हुआ निर्माण कार्य उल्लेखनीय है।[47] उक्त संवत में ऋषभदेव का मंदिर शान्तिनाथ का मंदिर और अष्टापद देव मंदिर बने थे। असंख्य मूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई थी। मूर्तिलेख अधिकांशत: गणधर चोपड़ा परिवार के हैं। देवकरण के पुत्र जैतकर्ण जैत्रसिंह या जयतसिंह की सबसे पहली ज्ञाततिथि भगवती सूत्र प्र म की विसं १५५ की प्रशस्ति[48] है। अतएव इसके पिता देवकर्ण की मृत्यु उक्त संवत के पूर्व अवश्य हो गई थी। इस जैत्रकरण के शासनकाल के शिलालेख भट्टिक सवत ८८२ (१५६२ वि) के मिले[49] हैं एक लेख म राणी पमार देवी की मृत्यु का उल्लेख है जो देवकरण की महारानी और राणा भीमसिंह की पुत्री थी। दूसरा लेख बड़सीसर तालाब जैसलमेर में लग रहा है।

बीकानेर के इतिहास राठौड़ में राव लूणकर्ण का जैसलमेरपर आक्रमण करना उल्लेखित[50] है। बीकानेर वाले इसमें अपनी विजय और भट्टिया प्रशस्ति में जैसलमेर वालों की विजय होना बीकानेर के किवाड़ लाना

(४७) जैन लेख संग्रह भाग ३ लें० म २१२०–२१ २१५३–१४ २१५८ २१६६ २१६६ २४ २–४

(४८) जैसलमेर ज्ञानभंडार भंडार सूची पृ ११

(४९) इ डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली १९५६ पृ २१२ में नं ४१ और ४२।

(५०) ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास पृ ११५–११६

वर्णित किया गया है। [51] इसकी मृत्यु वि॰सं॰ १५८५ में हुई थी।

जेत्रसिंह के पश्चात् लूणकर्ण शासक हुआ था। श्यामजी ने जैसलमेर के इतिहास में इसके पूर्व इसके ज्येष्ठ भ्राता करमसी के शासक होने का उल्लेख किया है किन्तु यह गलत प्रतीत होता है। लूणकर्ण का युवराज के रूप में वि॰सं॰ १५८१,१५८३ और १५८५ के लेखों में स्पष्टतः उल्लेख किया हुआ है। [52] यह एक महत्वपूर्ण शासक था। इसने जोधपुर और बीकानेर के संघर्ष का लाभ उठाकर फलोदी पोकरण का भाग छीन लिया था जिसे मालदेव ने वापस हस्तगत कर लिया। इस समय भारत में बड़े परिवर्तन हो रहे थे। खानवा युद्ध के बाद मेवाड़ की शक्ति कमजोर होती जा रही थी। गुजरात के सुल्तान के आक्रमण से वहां की स्थिति और विषम होगई। हुमायूं शेरशाह से हार भागकर मालदेव की सहायता का प्रयास कर रहा था। वह फलोदी होकर जैसलमेर राज्य की सीमा के पास स्थित देरावर गांव में पहुँचा था और वहां से जोगीतीर्थ तक गया था किन्तु कोई निश्चित निर्णय नहीं लिया जासका और उसे वहां से वापस अमरकोट लौट जाना पड़ा। जैसलमेर के शासक ने स्पष्ट रूप से कोई सहयोग नहीं दिया।

इस समय राठौड़ मालदेव शक्ति एकत्रित कर रहा था। इसका एक विवाह जैसलमेर की राजकुमारी उमादे के साथ भी हुआ था। यह राजकुमारी जीवन भर तक मालदेव से रूठी रही। शेरशाह के आक्रमण के समय परस्पर कुछ बात चली थी किन्तु ईसरदास कवि द्वारा उसे प्रोत्साहित करने पर बात रुकी ही रही [53]

---

(५१) योधीकामनरामिपतिसमवान् श्री लूणकर्ण प्रभु
    तेहे यस्य पराक्रम न महतो विख्यातिं सगराद् ॥
    उद्धास्यास्य पुरं कपाटयुगलं चानीय तत् पत्तनात।
    तस्याप्यादु निजेपुरे मधुपतिं प्रीतोभवद् विक्रमी ॥४४॥ महिमेधा महाकाव्य

(५२) जैन लेख संग्रह भाग ३ के सं २१५४, ५५

(५३) ईसरदास ने निम्नांकित दोहा कहा था अतएव उमादे गर्वित होकर कोसाना मकाम पर ही ठहर गई—

पूर्वी राजस्थान के के गुहिलवंशी शासक | १८

पूर्वी राजस्थान में नगर चाटसू आदि के आसपास दीर्घ काल तक (७वीं से ११ वीं शताब्दी तक) गुहिल वंशी शासकों का अधिकार रहा था। ये शासक भर्तृपट्ट वंशी गुहिल थे। इनके विस्तृत इतिहास जानने के लिये वि० सं० ७४१ का नगर[1] का शिलालेख, १० वीं शताब्दी का चाटसू के गुहिल वंशी शासक बालादित्य[2] का शिलालेख चौड़ का वि स० ८८७ का शिलालेख आदि साधन[2A] प्रमुख हैं।

नगर गांव उणियारा के पास स्थित है। इसका प्राचीन नाम कर्कोट नगर था। इस नगर का विस्तृत सर्वेक्षण कार्लाइल महोदय ने किया था और यहां बड़ी संख्या में मालवगण के सिक्के एकत्रित किये थे। इस से पता चलता है कि यह नगर उस समय भी श्रीसम्पन्न रहा होगा। यद्यपि इन सिक्कों के काल निर्धारण के सम्बन्ध में मत भेद है किन्तु यह निश्चित है कि यह नगर दीर्घ काल तक मालवों से सम्बन्धित रहा था। मालवों के दीर्घ वास के इस क्षेत्र पर अधिकार करने के कारण इस नगर को यहां से प्राप्त वि सं १०४१ के एक शिलालेख[3] में मालव नगर ही कहा गया है। मालवों ने यहां से बढ़ कर वर्तमान मालवा प्रदेश पर अधिकार किया[4] था। गुप्त शासकों से इनका संघर्ष हुआ था। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख में इसका

---

(१) भारत कौमुदी पृ १७१-७६

(२) एपि ग्राफि आ इ डिका vol XX पृ १० १५

(२A) उपरोक्त vol XX पृ १२२ १२५

(३) भारत कौमुदी पृ २७१-७२

(४) वरदा वर्ष १ अंक २ में प्रकाशित मेरा लेख "मालवगण

स्पष्टत संकेत है।[5] गुहिलवंशी शासक इस क्षेत्र में छठी शताब्दी में स थ प्रतीत होते हैं।

प्रारम्भिक गुहिलवंशी शासक

गुहिलवंश के संस्थापक गुहदत्त[6] की तिथि ओझा जी ने सामोली के वि० सं० ७०३ के शिलालेख के आधार पर वि० सं० ६२३ (५६६ ई०) मानी है। यह तिथि प्राप्त सामग्री के आधार पर ठीक[7] नहीं है। ओझा जी को उक्त इतिहास लिखते समय नगर गांव का शिलालेख मिला नहीं था। हाल ही में कई लेख बागड़ क्षेत्र से ७ वीं शताब्दी से ८ वीं शताब्दी तक के प्राप्त हुये हैं। गुहदत्त की तिथि पर मैंने अन्यत्र विस्तार से लिखा है। गुहिलवंश की ३ शाखाओं के राज्य ७ वीं शताब्दी में मिलते हैं (१) मेवाड़ के गुहिल (२) बागड़ के गुहिल और (३) नगर चाटसू आदि के गुहिल। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इन तीनों शाखाओं को अलग हुये कई पीढ़ियां व्यतीत अवश्य हो चुकी थी क्योंकि तीनों की वंशावलियां भिन्न २ हैं। नगर और मेवाड़ शाखाओं के तथा कथित मूल पुरुषों का काल निर्धारण ६ ठी शताब्दी और बागड़ शाखा का ७ वीं शताब्दी माना जाता है अतएव प्रतीत होता है कि ये शाखायें ६ ठी शताब्दी के पूर्व या प्रारम्भ में ही अलग हो चुकी होगी।

नगर गांव के शिलालेख में वर्णित शासक

नगर गांव का लेख भण्डारकर सूची[8] में सम्पादित किया था। मूल लेख एक कुए से मिला था। इस में कुल २४ पंक्तियां हैं और अर्द्धपटन सभी गुहिल शासकों का उल्लेख है।

---

(५) फ्लीट गुप्ता इन्स्क्रिप्शन्स पृ ८५
(६) 'जयति श्रीगुहदत्तप्रभव श्रीगुहिलवंशस्य' आटपुर का लेख
(७) "वरदा" के वासुदेव शरण अग्रवाल स्मृति अंक में प्रकाशित मेरा लेख 'बागड़ में गुहिल राज्य की स्थापना'
(८) भारत कौमुदी पृ २७ –७६

उक्त भर्तृ पट्ट को ओझा जी ने मेवाड़ का शासक[9] भर्तृ पट्ट माना है। लेकिन यह उनकी मान्यता वि॰सं॰ ७४१ के शिलालेख के मिल जाने से स्वतः खंडित हो गई है। नगर और चाटसु के शासक इसी शाखा के थे। इमोदा (मध्य प्रदेश) से वि॰ ११६० के शिलालेख में और नागड़ के कुछ लेखों में भर्तृपट्टाभिधान गुहिलवंशी' शासकों का उल्लेख मिलता[10] है। अतएव पता चलता है कि ये शासक दीर्घकाल तक इसी नाम से पुकारे जाते थे।

भर्तृ पट्ट का काल निर्धारण वि॰ ६४० या ५८३ ई॰ किया जा सकता है। औसतन प्रत्येक शासक का काल २५ वर्ष मानकर वि॰सं॰ ७४१ में से ४ शासकों के १०० वर्ष कम करने पर यह ति या जाती है। यद्यपि नगर गांव के उक्त लेख में वंशावली ईशान भट्ट से ही दी है और भर्तृ पट्ट का नाम नहीं दिया है किन्तु चाटसु के लेख में इसका स्पष्टत उल्लेख किया गया है कि ईशान भट्ट भर्तृ पट्ट का पुत्र था। डी॰ सी॰ गैंघ ने भर्तृ पट्ट की[11] तिथि ६८० ई॰ मानी है। इनकी मान्यता है कि चाटसु के लेख में हर्षराज को प्रतिहार राजा भोज का समकालीन बतलाया है जो ८४ ई॰ के आस पास हुआ था। इसलिये हर्षराज के ८ में पूर्वज भर्तृ पट्ट के लिये १६० वर्ष कम करके यह तिथि मानी है। स्पष्ट है कि उस समय नगर गांव का शिलालेख मिला नहीं था। इसलिये अब यह तिथि मान्य नहीं हो सकती है। प्राप्त सामग्री के आधार पर यह तिथि ६४ वि॰ या ५८३ ई॰ ही होना चाहिये।

ईशान भट्ट उपेन्द्र भट्ट और गुहिल का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है। नगर गांव के लेख में केवल 'श्रीमानीशानभट्ट' लिखि

---

(९) उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७/डी सी गैंघ ने इसका खंडन किया है [हिस्ट्री आफ गिहिलस हिन्दू इंडिया vol II पृ ११४५]

(१०) इंडियन एन्टीक्वेरी vol IV पृ ५५-५६। इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XXXV सं॰ १ पृ ६-१२

(११) हिस्ट्री आफ गिहिलस हिन्दू इंडिया vol II पृ ११४५

पामतिसको बमूल सुपास' सम्म ही भवन[12] है। उपेन्द्र भट्ट का भी परम्परागत वर्णन माभ मिलता है। इसका उत्तराधिकारी गुहिल हुमा था। इसके कई विशेषण प्रयुक्त[13] हुमे हैं यथा "महताम पे सरो मूल्यम्' ' "सर्वोर्वीक्ष राजमध्यसागर'। इसका उत्तराधिकारी धनिक हुमा जिसने विसं० ७४१में नगर गांव में एक बापी बनाई।

धौड़ का शिलालेख

कर्नल टॉड को धौड़ से एक शिलालेख मिला था। इसमें गुहिल वंशी धनिक का उल्लेख है। यह शिलालेख भव उदयपुर सग्रहालय में है। श्री भार भडारकर ने इसे गुप्त संवत् ४०७ पढ़ा है। यह उनकी मान्यता है कि धौड़ के लेख में वर्णित धनिक चाटसू वाले लेख का धनिक ही है। इसके विपरीत भोमाजी की मान्यता है[16] कि यह संवत २०७ का है जो हर्ष संवत् है एव धौड़ के लेख में प्रयुक्त धवलप्प नामक शासक संभवत मौर्य वंशी शासक है जिसका उल्लेख कोटा के शिलालेख[17] में हो रहा है। धी० डी० सी० सरकार ने इसे विसं० ७ १ पढ़ा है। उनकी मान्यता है कि धवलप्प कोटा के कणसवा के लेख में वर्णित धवल मौर्य का पूर्वज रहा होगा। भव प्रश्न यह है कि नगर गांव के लेख में वर्णित धनिक और धौड़ के लेख में वर्णित धनिक दोनों एक ही व्यक्ति हैं भथवा भिन्न भिन्न। डी सी० सरकार भाम्रा हरबार दशरथ शर्मा [18] भादि ने

---

(१२) लेख की पंक्ति २–३

(१३) लेख की पंक्ति सं ४

(१४) –"परम भट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीधवलप्पदेवप्रवर्द्ध मान राज्ये। गुहिल पुत्रानां श्रीधनिकम्बोपमुखमानानां मध्यगतायां—

(१५) एपिग्राफिया इ डिका vol XII पृ ११

(१६) उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७ का फुटनोट

(१७) गुहिलोत्स भ्राफ किष्किन्धा पृ ५३–५४

(१८) राजस्थान थ्रू दी ऐजेज भाग १ पृ २१२। उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७

विभिन्न २ मतों ने इसे भगग भलग माना है । इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। मगर गोड़ के धनिक का लेख वि० ७४१ का मिला है । अगर गौड़ वाला धनिक और यह एक ही व्यक्ति हो तो इसका शासनकाल बहुत लम्बा रहा होगा । भण्डारकर के पाठानुसार तो वि०सं० ७८१ तक यह जीवित रहा होगा और डी०सी० सरकार के संवत के पाठ के अनुसार यह वि० ७०१ से ७४१ तक जीवित रहा होगा। इस सम्बन्ध से निश्चित रूपसे कुछ भी कहा नहीं जा सकता[१९] है । इस सम्बन्ध में मुझे यह अधिक ठीक लगता है कि उक्त ये दोनों ही भिन्न २ शासक रहे होंगे । इनकी शाखायें भी भिन्न २ होंगी ।

श्री रोशनलाल सामर ने अपने लेख २० गुहिलोत्स आफ चाटसू' मे एक विचित्र मान्यता दी है कि गौड़ जहाज-पुर के पास है। जहाजपुर की स्थापना इनके अनुसार हूणों ने की थी मतगवणिक भी हुए था किन्तु इस मान्यता का कोई आधार प्रतीत नहीं होता है।

नासूरा के लेख वाला धनिक

अजमेर के पास स्थित नासूरा[२१] गांव से वि०सं० ८८७ का एक शिलालेख मिला है । इसमें धनिक और उसके पुत्र ईशान भट्ट का उल्लेख है। ओझा जी ने इसे[२२] और गौड़ वाले लेख में वर्णित धनिक

(१९) धनिक का चतुर्थ वंशज हर्षराज प्रतिहार राजाभोज I का समकालीन था जिसके शिलालेख विसं० ९०० से ९३८ तक मिले हैं । इसी प्रकार शंकरगण मायभट्ट II (वि०स०८७२) का सामन्त था । अगर ओझाजी की तिथि के अनुसार इसे हर्ष संवत् २०७ लेते हैं तो यह सम्वत् ८७० के आसपास आता है जो निःसंदेह गलत है।

(२०) जनरल आफ दी राजस्थान इन्स्टिट्यूट आफ हिस्टोरिकल रिसर्च vol III सं० ३ पृ १२

(२१) इण्डियन एन्टिक्वेरी vol LIX पृ २१

(२२) उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ११७

को एक ही व्यक्ति । । है।[२३] लेख में इसके वंश का वर्णन नहीं किया गया है केवल इतना ही वर्णित है "मण्डलाधिपश्रीमदीशान भटेन श्रीधनिक सुनुना" । इसके अतिरिक्त दोनों के शासन काल में भी अन्तर है। अतएव यह भिन्न व्यक्ति रहा होगा। केवल नामों की समानता से उन्हें एक ही वंश का नहीं मान सकते हैं।

चाटसू का शिलालेख -

चाटसू का शिलालेख कार्लायल[२४] ने ढूंढा था। उनका कहना था कि कई वर्षों पूर्व यहां के तालाब से इसे निकाला गयाथा जिसे यहां के रघुनाथ जी के मंदिर में लगवा दिया था।

यह काले पत्थर पर खुदा हुआ है। प्रारम्भ में सरस्वती और भगवान मुरा ी की वन्दना की गई है। ६ ठे श्लोक में गुहिल वंश की प्रशंसा की गई है एवं इसमें उत्पन्न भर्तृ पट्ट नामक शासक का उल्लेख है जिसे राम के समान ब्रह्मक्षत्री[२५] बतलाया है। इसके बाद ईशान भट्ट उपेन्द्र भट्ट गुहिल और धनिक का उल्लेख है जिनका विस्तृत वर्णन उपरोक्त नगर के लेख में है। धवल का पुत्र भाउक हुआ और भाउक का कृष्णराज। कृष्णराज के बाद शंकरगण शासक हुआ जिसके लिये लिखा मिलता है कि इसने अपने स्वामी के लिये गौड़ देश के शासक को हराकर उसे उसके समक्ष प्रस्तुत किया। गौड़ देश का शासक निसंदेह धर्मपाल था। इसे नाग भट्ट II ने हराया [२६] था। मडोर के प्रतिहारवंशी शासक बाउक के वि० स० ८९४ के शिलालेख में कक्क के लिये भी मु ये र में गौड़ों को हराने का उल्लेख [२७] है। धवनिवर्मा के उ‍ना के वि० स० ९५६ के लेख में उसके पूर्वज

(२३) फुटनोट २१ उपरोक्त
(२४) आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया vol VI पृ ११९
(२५) "ब्रह्मक्षत्र' के सम्बन्ध में डी सी सरकार की मान्यता 'गुहिलोस आफ किष्किन्धा पृ ६-८ एवं हिस्ट्री आफ मेवाड़ राय चौधरी द्वारा दृष्टव्य है।
(२६) एपिग्राफिया इण्डिया vol XIII पृ ८७ फुटनोट
(२७) बाउक के शिलालेख श्लोक २४

बाहुक धवल धर्मपाल और कर्नाटक सेनाओं को हराने वाला वर्णित किया गया[28] है। अतएव प्रतीत होता है कि नाग भट्ट के साथ उक्त युद्ध में शंकरगण के अतिरिक्त अन्य कई शासक और भी थे। उसने बड़ी वीरता दिखाई थी जिसके फलस्वरूप उसका विवाह नाग भट्ट की पुत्री यज्ञा से हुआ था। चाटसू के लेख में इस यज्ञा को शिव की भक्त और महामहीभृत की पुत्री वर्णित[29] की गई है जो नाग भट्ट ही रहा होगा। इसके हर्षराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो प्रतिहार राजा भोज का समकालीन था। प्रस्तुत लेख में वर्णित किया है कि उसने उत्तरी भारत के कई शासकों से नत किया था एवं उक्त भोज को भी बंसी घोड़े भाकर के दिये थे जो सिंधु के रेगिस्तान को कुशलता पूर्वक पार कर-सकते थे। डा. दशरथ शर्मा की मान्यता है कि यह संदर्भ भोज के सिन्धु प्रदेश के आक्रमण का द्योतक[30] है। संभवत चाटसू का यह शासक उक्त आक्रमण में प्रतिहार शासक के साथ युद्ध में सम्मलित था। इसकी महारानी का नाम सिल्लो था। इसका पुत्र गुहिल II हुआ। चाटसू के लेख में इसे बहुत यशस्वी वर्णित किया[31] है। इसको गौड़ देश को जीतने वाला लिखा है। इसने संभवत नारायण पाल नामक शासक को या तो भोज I के समय या उसके उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल की सेनाओं के साथ रहकर हराया होगा। इसका विवाह परमार राजा वल्लभराज की पुत्री रज्जा से हुआ था। इसका पुत्र भट्ट हुआ। यह भी प्रतिहारों के आधीन था और दक्षिण के कई राजा से युद्ध किये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि महिपाल प्रतिहार के समय इसने उसकी सेनाओं के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट शासक इन्द्र या उसके उत्तराधिकारी अमोघवर्ष II या गोविन्द चतुर्थ को हराया

---

(२८) एपिग्राफिया इंडिका vol IX पृ १
(२९) चाटसू का लेख श्लोक नं० १७
(३०) राजस्थान थ्रू दी एजेज भाग १ एवं इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली vol XXXIV पृ १४१
(३१) चाटसू का लेख श्लोक २

होमी[३१] इसकी रानी का नाम पुरवा था जो विश्वल नामक शासक की पुत्री थी। इससे बालादित्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसकी उक्त शिलालेख के श्लो० २९ से ३२ में बड़ी प्रशंसा की गई है। इसका विवाह शिवराज चौहान की पुत्री रट्टा से हुआ था। इसकी पत्नि की मधुर स्मृति में इसने चाटसू में भगवान मुरारि का एक सुन्दर मन्दिर बनवाया बालादित्य के ३ पुत्र बल्लभराज विग्रहराज और देवराज थे।

इस प्रशस्ति को भानु नामक एक कवि ने जो श्रीत का पुत्र था और कार्तिक जाति का था बनाया था और इसे सूत्रधार भाइला ने पत्थर पर खोदा था।

नगर के अन्य लेख

इस लेख के बाद गुहिल वंशियों का इस क्षेत्र से कोई उल्लेख नहीं मिलता है। नगर गांव से विस० १ ४३ का शिलालेख यहाँ के मध्य किसी ग्राम से[३३] मिला था। इसमें उक्त नगर की समृद्धि का सुन्दर वर्णन है। इसमें वर्णित है कि यहां कई मन्दिर हैं और कई धनी व्यक्ति रहते हैं। उस समय के शासक का नाम "लोकनृप" दिया है। यह उपाधि रही प्रतीत होती है। इस लेख में धर्कट वंशी वैश्य द्वारा विष्णु के मन्दिर बनाने का उल्लेख है। जिसके पौत्र नारायण ने कई शिखरों वाला मन्दिर बनवाया। इसके वंशज सुगन्ध ने भी एक मंदिर बनवाया जिसमें विष्णु शिव गरुड़ आदि की प्रतिमायें थी।

नागरे के आसपास गुहिल[३४] नामक शासक के २००० से अधिक सिक्के मिले हैं। नटवर से भी एक सिक्का 'गुहिलपति का

---

(३२) जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री XXXVIII भाग पृ ६०६ पर डा० दशरथ शर्मा का लेख। अल्तेकर–राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाईम्स पृ ११–१५

(३३) भारत कौमुदी पृ २७,

(३४) कनिंघम आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया भाग IV पृ १५। ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ ११

मिला है। ये सिक्के पूर्वी राजस्थान के मुद्रिसंबंधी सामन्तों के रहे होंगे।

इस प्रकार लगभग ४०० वर्षों तक इनका इस क्षेत्र पर अधिकार रहा। इनको प्रारम्भ में मौर्यों और बादमें बयाना और मत्स्य के यादवों से संघर्ष करना पड़ा था। इसके बाद प्रतिहारों की अधीनता में कई सफलता पूर्वक युद्ध करने से इस राजवंश की बड़ी ख्याति हो गई। इसका अन्त सम्भवतः चौहानों ने किया था।

यहाँ से ये लोग मालवा की तरफ चले गये थे। जहाँ वि० ११६० का इंगोदा का शिलालेख मिल चुका है। यहाँ से ये बागड़ की तरफ गये थे जिसका विस्तृत वर्णन ऊपर बागड़ में गुहिल राज्य नामक लेख में किया जा चुका है।

[शोध पत्रिका में प्रकाशित]

मालव गण | १६

प्राचीन भारत में गण राज्यों को मुख्य रूप से २ भागों में विभक्त किया जाता था। एक राज्यशब्दोपजीवी और दूसरे आयुध जीवी। इनमें मालवगण आयुध जीवी थे इनके शासक राजा की उपाधि धारण नहीं करते थे।

मूलनिवासस्थान—मालवों का मूल निवास स्थान पंजाब में था। कर्णपर्व में इनका उल्लेख पंजाब में किया है। महाभारत में कहीं २ इन्हें माध्यमिकेयो के साथ भी वर्णित किया है [1] अतएव प्रतीत होता है कि उक्त अंश बाद का जोड़ा हुआ क्षेपक रहा होगा। युनानी इतिहासकारों ने इनको पंजाब में ही शिबियों के पास बतलाया है। इनमें *मल्लोइ मल्लइ या मल्ली* वर्णित किया है जिन्हें 'आक्सिड्रकाई' के साथ वर्णित किया है। इन दोनों जातियों को मालव और क्षुद्रक माना है। इन जातियों ने महाभारत के युद्ध में कौरवों के पक्ष में लड़ाई की थी। राजसूय यज्ञ के समय दोनों जातियां साथ २ युधिष्ठिर को कर देती थी महाभारत में भी दोनों जातियों को अर्जुन के आक्रमण से बड़ा नुकसान पहुंचा था। इन *भीष्मपितामह* की जीवन रक्षा की थी। (1A) दीपक की माता भी मालव जाति की थी।

सिकन्दर का आक्रमण

हिडे स्पेथस (झेलम नदी का वह भाग जो चिनाब मिलने के बाद

---

१ महाभारत कर्ण पर्व २।५० द्रोणपर्व १०/१७ किन्तु सभापर्व ३२/७ में मालवों को *माध्यमिकेयों शिबियों* के साथ वर्णित किया है।

१A—एपिग्राफिया इंडिका भाग २७ पृ० २५८

जाता है) के तट पर पहुँचने पर सिकन्दर को सूचना दी गई मालव और क्षुद्रक सम्मिलित होकर लड़ने को तैयार हो गये हैं। कार्टियस लिखता है कि दोनों संयुक्त सेना का सेनापति एक क्षुद्रक सरदार था किन्तु मालवों ने उसे स्वीकार नहीं किया अतः युद्ध नहीं किया। एरियन लिखता है कि क्षुद्रक और मालव दोनों ही संयुक्त रूप से लड़ने को तैयार हो गये थे किन्तु आक्रमणकारी ने इतनी जल्दी से आक्रमण कर दिया कि दोनों सम्मिलित नहीं हो सके। मालवों की सिकन्दर की सेना के साथ युद्ध में हार हो गई। फिर भी वीर जाति ने आक्रान्ता की सेना का दृढ़ता पूर्वक मुकाबला किया था किन्तु इनके नगर एक के बाद एक आक्रान्ता के हाथ पड़गए। लोग नगर छोड़कर चलेगये और 'हाई ड्र ओटस' (रावी) के किनारे जाकर एकत्रित हो दूसरे मोर्चे को तैयार करने लगे। सिकन्दर ने अपने सेनापति पैथन और डिमेट्रियस को भेजा। मालवों ने एक समीप के अपने नगर में शरण ली। इस पर भी सिकन्दर ने आक्रमण किया। यद्यपि मालवों की हार होगई किन्तु युद्ध में सिकन्दर स्वयं घायल हो गया एवं क्रोधित होकर बदला लेने की घोषणा की मालवों की स्त्रियों और बच्चों तक को मौत के घाट उतार दिया। डीयोडोरस और कर्टियस ने यह नगर क्षुद्रकों का लिखा है किन्तु एरियन एवं प्लूटार्क ने स्पष्ट लिखा है कि यह नगर मालवों का था।[१]

युद्ध की समाप्ति पर १०० सरदार संधि के लिये गये जिनका की सिकन्दर ने बड़ा सम्मान किया। इनके बैठने के लिये सोने की कोचियां रखी गई थीं २। इससे पता चलता है कि विदेशी आक्रान्ता भी इनका सम्मान करता था।

क्षुद्रकों और मालवों का सम्मिलित होना।

मालव और क्षुद्रक राज्यों ने मिलकर एक सम्मिलित संघ स्थापित

---

२ मेक क्रिण्डल– इनवेजन आफ इंडिया पृ० २३९ फु० नो० १/ जरनल यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी VII भाग २ पृ० २८/ १ कियन ए टिक्वेटरी भाग १ पृ० २१

या था। पाणिनि के सूत्र खण्डिकादिभ्यश्च (४।२।४५।) की वार्तिका कात्यायन ने मालवों और क्षुद्रकों के द्वद्व का उल्लेख किया है। इसके लिए एक नियम भी बना दिया था, जिसे आगे चलकर पतञ्जलि ने स्पष्ट किया कि 'क्षुद्रक-मालव खण्डिकादिषु पठ्यते'। इस प्रकार पाणिनि के समय मालवों और क्षुद्रकों का यह द्वद्व प्रचलित नहीं हुआ था किन्तु कात्यायन के समय हो चुका[1] था। युनानी लेखक कर्टियस ने उनकी सम्मिलित सेना की संख्या एक लाख बताई है। वेबर ने मालवों और क्षुद्रकों की संयुक्त सेना का उल्लेख करने के कारण अपिशाली का समय सिकन्दर के सम सामयिक माना है। इस सम्बन्ध में वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं कि क्षुद्रक और मालव सेना दीर्घ काल से चली आरही थी। वेबर की इस मान्यता में कोई शक्ति नहीं है कि यह संघठन केवल सिकन्दर से लड़ने को ही बनाया था। इस सेना का नाम आधुनिक भाषा में "क्षुद्रक मालवी सेना" रखा जा सकता है। बहुत कुछ संभव है कि इस सेना के विशेष प्रकार के व्याकरण के सूत्र की रचना संभवतः पाणिनी ने ही कर दी थी (गण-सूत्र क्षुद्रक मालवात् सेना संज्ञायाम्) तथा दोनों वैयाकरणों ने भी मालवों की सेना की ओर संकेत किया है। सभापर्व के ५२ वें अध्याय में मालवों और क्षुद्रकों को साथ साथ वर्णित किया है, जबकि ३२ में अध्याय में मालवों का ही विवरण है और क्षुद्रकों का नहीं। इस से स्पष्ट है कि उस काल तक मालव क्षुद्रक संघ में सम्मिलित हो चुके होंगे। पतंजलि ने क्षुद्रकों की एक विजय का उल्लेख किया है, जो उन्होंने अकेले ही प्राप्त की

१- खण्डिकादिभ्यश्च ४।२।४५
अन्न छिद्रिणु वाता वे कोठव क्षुद्रकमालवात
अनुदात्तादेरित्यं वाय्न सिद्धि नियम क्षुद्रक मालव शब्द खण्डिका दिषु पठ्यते और भूमि विलोडे पृ ६

जरनल यु पी हिस्टोरिकल सोसायटी VII भाग २ पृष्ठ २९ का — फुटनोट १८।ए इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली दिसम्बर १९५१ सं० ४ पृ २८

थी। तदाचिरमि दर्शितम् (महाभाष्य ५।३।११७)। इस प्रकार पतंजलि के पश्चात् क्षुद्रक पूर्ण रूप से मालव संघ में विलीन हो गये थे।

भारत के वृहद् इतिहास में पं० भगवद्दत्त ने मालवों एवं क्षुद्रकों का मेगस्थनीज के कथन को आधार मानते हुए अनुवंशी बतलाया है किन्तु यह बात सही नहीं है। नान्दसा के अभिलेख में इन्हें 'इक्ष्वाकु प्रथित-राजवंश'[3] कहा है जो कभी भी शूद्रवंशी नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त वैयाकरणों ने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है। व्याकरण में नियम है कि जो मालव संघ का सदस्य ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय नहीं था वह मालव्य (एकवचन) कहलाता था जबकि क्षत्रिय और ब्राह्मण को मालव कहा जाता था। दोनों का बहुवचन मालवा ही होता था (काशिका ५/३/११४)। इस प्रकार मालवों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सम्मान किया जाता था।

मालवगण का प्रस्थान और शत्रुओं के साथ संघर्ष

मौर्य काल में किन्हीं कारणों से विवश होकर इन्हें अपना घर छोड़ना पड़ा था। जनरल कनिंघम का विश्वास है कि मालव जाति राजस्थान में मरु या मारवाड़ के मार्ग से आई होगी और मेवाड़ एवं अजमेर पर पाये सिक्के इनके नवागमी प्रदेश की विजय के सूचक होंगे[4]। नगरी के शिवि जनपद के सिक्कों के साथ २ मालवों के सिक्के भी मिले हैं। जनरल कनिंघम ने इनका काल निर्धारण २५० से २०० ई० पू० किया है,[5] इसके पश्चात् स्मिथ एवं जायसवाल के अनुसार ई० पू० १५० से १०० के मध्य में ये लोग कर्कोट नगर (जयपुर) में बस चुके[7] थे। प्रसिद्ध यवन आक्रमणकारी डिमित्र का

---

४ एपीग्राफिआ इण्डिका भाग २७ पृ० २५२।

५ कनिंघम—आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, पृ० १८१
श्री जायसवाल इन सिक्कों को राजाओं के संक्षिप्त नाम वाले मानते हैं [हिन्दू राजतंत्र पृ० ३१७]

६—कनिंघम—आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया भाग ६ पृ० २०१

७—स्मिथ—केटलाग आफ द क्वाइन्स इन द इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता पृ० १६१ एवं जायसवाल हिन्दू राजतंत्र पृ० २४६

आक्रमण भी इसी समय हुआ था। पतंजलि ने माध्यमिका पर यवन आक्रमण का उल्लेख किया है। [अरूणद्यवनो माध्यमिकाम्]। विमित के आक्रमण के फलस्वरूप ही ये माध्यमिका छोड़कर कर्कोट की ओर बढ़े हों तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु नान्दसा [तहसील गंगापुर जिला भीलवाड़ा] के वि० सं० २८२ के लेख में यहां मालव गण राज्य का उल्लेख है। यह गांव नगरी से २५ मील उत्तर पश्चिम में है, अतएव स्पष्ट है कि मालव लोगों ने कर्कोट नगर में रहते हुए माध्यमिका क्षेत्र को पूर्ण रूप से छोड़ा नहीं था।

पश्चिमी भारत एवं मथुरा में उस समय क्षत्रप शासन कर रहे थे। महाक्षत्रप नहपान के दामाद उषावदत्त के नासिक के लेख में उत्कीर्ण है कि उसने भट्टारक की आज्ञा प्राप्त कर वर्षाऋतु में मालवों से घिरे हुए उत्तमभद्र क्षत्रियों को मुक्ति दिलाई। मालव लोग उसकी आवाज सुनते ही भाग गये—

"भटारिकाअनतिया च गतोस्मि वर्षारितु मालयेहि रुध उतमभद्र मोचयितु ते च मालया प्रनादेनेव अपयाता उतमभद्रकानं च क्षत्रियानं सर्वे परिग्रहाकृता"—

उषावदत्त की विजय के बाद कुछ काल तक मालवों के राज्य पर शकों का अधिकार हो गया था। स्वयं नहपान का एक सिक्का कर्कोट से मिला था। उत्तम भद्र क्षत्रिय जिनसे मालवों की लड़ाई हुई थी कौन थे? इनके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ है। किन्तु ये लोग

८—जरनल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग ५ पृ ४६ पर स्टीवेन्सन द्वारा सम्पादित। इसका संशोधित पाठ भी बर्गेस द्वारा केव टेम्पल्स आफ वेस्टर्न इंडिया पृ ९९–१०० पर प्रकाशित कराया गया है। इन्होंने मालय को मलय पर्वत वासी बतलाया है। इसे भी रूडोल्फ हार्नले ने इपि ग्राफिया इंडिया के ८ वें भाग से पृ ७८ पर पुनः प्रकाशित कराके यह वर्णित किया है कि 'मालाये व हिरुध्म' दो अलग २ शब्द नहीं होकर एक ही है और दोनों के बीच कोई शब्द छूटा हुआ नहीं है।

निस्संदेह राजस्थान में कहीं निवास कर रहे थे। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार वे मध्यमीक थे। मालव लोग उस समय उज्जैन से पुष्कर के मध्य कहीं रह रहे थे क्योंकि उपरोक्त लेख के अनुसार उषावदत्त मालवों को विजय कर पुष्कर गया था और स्नानपूर्व दान किया था।

गोतमीपुत्र शातकर्णी की माँ बालाश्री का गोतमीपुत्र के राज्य के १६ वें वर्ष का एक लेख नासिक में प्राप्त हुआ है। उसमें गोतमीपुत्र शातकर्णी को क्षहरात कुल का समूल नष्ट करने वाला कहा गया है।[9]

"खखरात वंस निरवसेस करस सातवाहन कुलयस पतिथापन करस"

इस प्रकार क्षत्रप राज्य विनष्ट हो जाने पर मालवों को भी राज्य पुनः संस्थापन का अवसर प्राप्त हुआ था।

मालवों के नगरी नान्दसा और बरना के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। वे इनकी विजय के सूचक हैं। मेरे ग्राम नगापुर से ६ मील दूर नान्दसा के तालाब के मध्य वि० सं० २८२ का जो स्तम्भ लेख है[10] उसमें लिखा है कि मालव वंश में उत्पन्न मनु की तरह गुणों से युक्त जयसोम प्रभागवर्धन के पौत्र जयसोम के पुत्र सोगियों के नेता, गोरप श्री सोम द्वारा अपने बाप-दादों की धुरी का समुद्धार करके षष्ठिरात्र यज्ञ

प्राकृत मिश्रित संस्कृत है। मालव के लिये मालय भी आ सकता है जैसे कि अस्माणांम रायरोहा रथा यहाँ नगरी के लिये णयरी आया है।

९ जरनल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग ५ पृ० ४१–४२ में स्टीवेन्सन द्वारा सम्पादित और संशोधित रूप श्री बर्जेस द्वारा केव टेम्पल्स आफ वेस्टर्न इंडिया के पृ० १०८–१०९ में दिया है।

१० महता स्वशक्तिगुरुणपौरुषेणप्रथमचन्द्रदर्शनमिव मालववंशविषय मवतारयित्वैक षष्ठिरात्रमशिसममपरिमितमर्म्मसाम समुद्धृत्य पितृपैतामहिं (ही) धुरमानृण्य सुपिवर्तं वाचा पृथिव्योर उर मनुत्तमेन यशसा स्वकर्म्मसंपदया विपुला समुपगतासृद्धिमात्म सिद्धि वितत्य मायामिव सव भूमौ सर्वे कामीक वारी बसोर्धारामिव ब्राह्मणानभिषेचनरेषु—हृत्वा श्राद्ध स्व प्रजापति महर्षि विष्ण स्थानेषु—— [इपी० इंडिका का भाग २७ पृ० २५२]

किया। इस लेख से प्रकट होता है कि मालवों ने कोई बड़ी विजय प्राप्त की थी। सम्भवतः इन्होंने खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था। लेख में स्पष्ट रूप से प्रथमचन्द्र के समान मालव राज्य का उत्कर्ष किया है। इस विजय की स्मृतिस्वरूप एक विष्णु यज्ञ भी किया जिसे इस लेख में आलंकारिक भाषा में वर्णित किया है कि पोरप सोम ने जिसका यश धावा व पृथ्वी के अन्तराल में छा गया था और जिसने यज्ञ भूमि में अपन कर्म की सम्पदा के कारण प्राप्त ऋद्धियों को अपनी सिद्धियों के समान सब कामनाओं के समूह की धारा को माया की तरह विस्तार कर वसु [धन अथवा घी] की धारा से ब्राह्मणों अग्नि वेदवानर आदि के लिये हवन किया और मालवगण के उन्नत प्रदेश म षष्ठिरात्र यज्ञ किया। मालवगण के महा तड़ाग से वहाँ के वृष यज्ञ यूप और चैत्य उस सोम द्वारा दी गई एक लाख गायों क सीगों रगड़ से संकुल हो जाने से जो पुष्कर को भी पीछे रखता था एक यज्ञयूप खड़ा किया गया। यह लेख मालव जाति का प्राचीनतम लेख है। यज्ञों की परम्परा बराबर इनमें रही थी। बरनाला का यज्ञ स्तूप और कोटा के यज्ञ स्तूप भी इसी समय के हैं। लेकिन कला की दृष्टि से नान्दसा क स्तूप अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन यज्ञ स्तूपों पर गुप्त कालीन विशेष प्रकार का पोलिश भी हो रहा है।

मालवों का अवन्ति प्रदेश में निवास कब हुआ था यह बतलाना कठिन है। रुद्रदामा के गिरनार क लेख में इस भू भाग को 'पूर्वापर आकरावन्ती" कहा[१४] है। कालिदास के काव्य में सर्वत्र अवन्ती और

१४ स्व वीर्यार्जितानामनुरक्तसर्वप्रकृतीनां पूर्वापराकरावन्त्यनूपनी वृदानर्त सुराष्ट्रश्वभ्र भरुकच्छसिन्धुसौवीर कुकुरापरान्तनिषादा दीनां समग्राणां.........

[रुद्रदामा का गिरनार का लेख]

वाङ्मयों शब्द[15] दिये गये हैं। ये धीरे २ कालक्रम में बढ़ते गये और पहले उत्तरी मालवा में बसे, जहां से गंगाधार का वि० सं० ४८ और मन्दसौर से ४९३ का लेख मिला है। समुद्रगुप्त के शासनकाल के समय यह जाति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुई थी क्योंकि प्रयाग के उसके लेख में इनसे कर लेने का[16] उल्लेख है। समुद्रगुप्त के पश्चात् इनको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से लोहा लेना पड़ा और इसके पश्चात् कलचुरियों से संघर्ष लेना पड़ा था। इस प्रकार साम्राज्यवादियों से संघर्ष की जो शक्ति उनमें पंजाब में विद्यमान थी वह यहां आते २ क्षीण पड़ने लग गई और इन्हें अब अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखना कठिन हो गया। बाण के ग्रन्थों में मालवा शब्द का प्रयोग है। अतएव ५ से ७ वीं शताब्दी के मध्य ये लोग सम्पूर्ण मालवे में फैल गये थे और इनके चिरकाल तक इस प्रदेश में निवास करने के कारण ही इस प्रदेश का नाम मालवा पड़ गया प्रतीत होता है।

मालव गणराज्य के सिक्के २ प्रकार के मिले हैं [१] मालवानां जय लिखे वाले, [२] इस प्रकार के सिक्के जिन पर कुछ अस्पष्ट[17] नाम हैं, उदाहरणार्थ मरज [महाराज] जम पय मगच जम मपोजय या मगोजय। [वरदा में प्रकाशित]

१५, रघुवंश ६/१४ मेघदूत पूर्वमेघ श्लोक २१ में दशार्ण का वर्णन है
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२३
श्लोक १० में अवन्ती प्रदेश का वर्णन है 'प्राप्यावन्तीनुदयन कथाकोविदग्रामवृद्धान्' है। श्री रेपसिन ने बौद्धकालीन भारत के पृ० २८ पर लिखा है कि अवन्ती को मालवा ८ वीं शताब्दी से कहा जाने लगा था।

१६ .... मालवार्जुनायनयौधेयमाद्रकाभीरप्रार्जुनसनकानिक काकखरपरिकादिभिश्च सर्वकरदानाज्ञाकरण ...... [फ्लीट गुप्ता इन्स० नम्बर १ पंक्ति २२]

• काशीप्रसाद जायसवाल हिन्दू राजतंत्र पृ० १६०

विक्रमी संवत | २०

परम्परा से यह विश्वास किया जाता है कि इस संवत् का प्रचलन विक्रमादित्य नामक एक राजा ने किया था। इसने शकों को हराकर उक्त विजय की स्मृति में नये संवत् को चलाया। इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाओं को मुख्य रूप से ३ भागों में विभक्त कर[1] सकते हैं (१) वैतालपंचविंशति में वर्णित विक्रम को कुछ लोग विक्रमी संवत् चलाने वाला मानते हैं, (२) कुछ विद्वान् हाल की गाथा सप्तशती में वर्णित विक्रम राजा को इस संवत् का चलाने वाला मानते हैं और (३) कालकाचार्य कथा में गर्दभिल्ल का उल्लेख है। मेरुतुंग ने इसके पुत्र विक्रमादित्य का उल्लेख किया है जिसने शकों से उज्जैन को मुक्त कराया था और जिसे विक्रमी संवत् का चलाने वाला भी माना गया है। उपर्युक्त ३ कथाओं में परम्परा से यही विश्वास किया जाता रहा है कि विक्रमादित्य, जो उज्जैन का राजा था विक्रमी संवत् को चलाने वाला है। लेकिन विक्रमी संवत के प्रारम्भ के संवतों में विक्रम शब्द के स्थान पर 'कृत' शब्द ही लिखा हुआ है अतएव उपर्युक्त धारणा सही नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त मालव लोग विक्रमी संवत के प्रचलन के समय निश्चित रूप से टोंक जोधपुर और बूंदी जिले के उत्तरी भाग में ही रहते थे और इनका उज्जैन से कोई सम्बन्ध नहीं था। अतएव इसे उज्जैन के राजा विक्रम द्वारा चलाये जाने की कल्पना निराधार है। मेरुतुंगाचार्य का वर्णन अर्वाचीन है और परम्परा

१ जी एच आफ इम्पीरियल युनिटी पृ १५५

२ संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खं।
चलणेण विक्कमाइच्चचरिअमणु सिक्खिअं तिस्सा॥
(गाथा ४६४ वेबर का संस्करण)

स वर्षों या ऋतु कवामों को आधार मान कर ही इन्होंने ऐसा लिखा प्रतीत होता है विक्रम संवत् की सबसे पहली तिथि धोलपुर के चण्ड महासेन [3] के लेखकी ८९८ की है। इसके पहले के सब लेख या तो कृत संवत में है या मालव संवत् में।

'कृत' शब्द को डा० फ्लीट न मत से सम्बन्धित माना है। श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इस मत का खंडन करते हुये लिखा है कि गंगधार के लेख मे कृतेषु और मालेषु दोनों शब्द होने म उक्त अनुमान ठीक नहीं बैठता है। नगरीर के लेख में 'कृत संज्ञित' लिखा है। इसमें कृत वर्ष के होने का उल्लेख मिलता है। उनका कहना है कि वैदिक-काल में ४ वर्ष का एक युगमान भी था। इस युगमान के वर्षों के नाम वैदिक-काल के युग के पासों की तरह कृत त्रेता द्वापर और कलि थे। उनकी रीति के विषय म यह अनुमान होता है कि जिस वर्ष में ४ का भाग देने से कुछ न बचे उस वर्ष के कृत १ बचे तो त्रेता, २ बचे तो द्वापर और १ बचे तो कली [4] संज्ञा होती है। जैनों के भगवती सूत्र में भी इसी प्रकार के युगमान का उल्लेख है। इसमें कड़ जुम्म (कृत) त्योज (त्रेता) दावर जुम्म (द्वापर) और कलि युग का इसी प्रकार [5] उल्लेख है।

३ चिनिक गांव से दानपत्र वि स ७९४ कार्तिक वदि अमावस्याका मिला है किन्तु उस दिन सूर्य ग्रहण आदित्यवार ज्येष्ठा नक्षत्र आदि न होने से इसे भी फ्लीट और कीलहार्न ने जाली ठहराया है (इ डियन एन्टिक्वेरी भाग १२ पृ १५५)

४ भारतीय प्राचीन लिपि माला पृ १६६ फुटनोट ८

५ कतिणं भंते जुम्मा पण्णत्ता ? गोयम चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता। तं जहा। कडजुम्मे तेओगे दावरजुम्मे कलिओगे। से केणट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चइ जाव कलिओगे गोयम। जेणं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिये से तं तेओगे। जेणं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिये से तं दावर जुम्मे। जेणं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एकपज्जवसिये से त कलिओगे। १३०१-७२- भगवतीसूत्र गद्यानुवाद पृ० ७२ भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ १६७ के फुटनोट से उद्धृत।

दूसरा मत "कृत" के सम्बन्ध में यह है कि यह किसी का नाम है। यह नेता था जिसने मालवों को शकों से मुक्ति दिलाई। श्री मजुमदार का कहना है कि कृत शब्द महाभारत, भागवत, हरिवंश पुराण और वायु पुराण में भी व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप से प्रयुक्त हो रहा है। अतएव संभवतः यह मालवों का कोई नेता हो सकता है।[१]

जहाँ तक ओझाजी के मत का प्रश्न है कृत संवत् की तिथियों का इस सिद्धान्त से मेल नहीं होता है। नांदसा का लेख वि. सं. २८२ का है। इसमें स्पष्टतः 'कृत' संवत् प्रयुक्त है। इसमें ४ का भाग देने पर २ शेष रहते हैं। इसी प्रकार बरनाला यूप की तिथि २९५ कोटा के बड़वा के यूपों की तिथि २९५ भी आती है। अतएव ओझाजी का सिद्धान्त इस पर लागू नहीं किया जा सकता है। जहाँ तक कृत शब्द के किसी नेता के रूप में प्रयुक्त करने का प्रश्न है इस पर निश्चित रूप से विचार किया जा सकता है। सम सामयिक भारत में कनिष्क हुविष्क आदि के लेखों में भी इसी प्रकार के संवत् मिले हैं। उदाहरणार्थ मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति के लेख पर "महाराजस्य राजातिराजस्य देवपुत्र षाहि कणिष्कस्य सं० ७ हे० १ दि १०—५ है। इसी प्रकार "महाराजस्य देवपुत्रस्य हुविष्कस्य स ३९ हे ३ दि ११ है। लेकिन कृत सम्वत् की तिथियों पर यह लागू नहीं हो सकता है क्योंकि यह कहीं भी व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में इस संवत् की कुछ तिथियों को अध्ययनार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(१) नान्दसा के वि० सं० ८२ कृतयोर्द्वयोर्वर्षशतयोर्द्व्यशीतयो चैत्रपूर्णमास्याम्'

(२) बड़वा की तिथि २९५— कृते हि २००+९०+५ फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी श्री ' —

---

१ दी एज आफ इम्पिरियल युनिटी पृ० १५४ फुटनोट १।

७ इपि ग्राफिया इण्डिका भाग ३१ पृ० ४३ एवं डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग १ का परिशिष्ट।

सम्पन्न तो हो गया लेकिन दोनों पूर्ण रूप से एक नहीं हो गये थे क्योंकि उन्होंने एक स्थल पर ' एकाकिमि' क्षुद्रकैर्जितम् भी लिखा है। यह संघ ५८ B C को सम्पन्न हुआ था और उसी दिन इस संघ की स्थिति को चिरस्थायी बनाने के लिये एक नये संवत को प्रचलित किया गया। मालवगणाम्नात प्रशस्ते कृत संज्ञिते' से इसकी पुष्टि होती है।

इन स्पष्ट बातों को भुला कर हम किस प्रकार राजा विक्रम की कल्पना करते हैं। विक्रमादित्य के सम्बन्ध में कई प्रकार के वृतान्त मिलते हैं। एक कथा में पैनाचाय सिद्धसेन और विक्रमादित्य में संवाद प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सिद्धसेन से विक्रमादित्य पूछता है कि मेरे समान दूसरा राजा कब होगा ? तब वह उत्तर देता है'

पुन्ने वास सहस्से सयम्मि वरिसाणि नव नवई अहि ए।

होही कुमार नरिन्दो तुह विक्कमराय सरिच्छो।

अर्थात् विक्रम संवत ११९९ में कुमार पाल होगा।

एक अन्य कथा में उसको कृत वाली वर्णित किया है। पुरातन प्रबन्ध के विक्रम प्रबन्ध में यह वर्णन इस प्रकार है—

कृत वर्षो समुत्पन्नो विक्रमादित्य भूपति । गन्धर्वसेनतनया पृथिवीमनृणां व्यधात्।

क्षुद्रिकादिभ्यश्च ॥४।२।२५

'अम्न मिलित्पुवाता है कोऽर्य क्षुद्रक मालवात्

' अनुदात्तादेरित्ये चाञ्च सिद्ध विमर्थ क्षुद्रकमालव शब्द' शक्तिका दिपु पठयते गोत्रायया अञ्च प्राप्ता स्तद्राधनार्थम् (अनुदात्तादरेत्र्र्ञ्) गोत्राद्यान्त न च तद्गोत्रे ।४।२।३९ गोत्र हुमा अवतीगुवान न सद्रकमालव मम्यो गोत्रम्। न पाप समुदायो गोत्र ग्रहणेन गृह्यते। तथ्था—जनपद समुदायो जनपद ग्रहणेन न गृह्यते। काशी कौसलीय इति वुन्न न भवति। तस्य विधिना प्राप्नोति।

मैनन्या नियमार्थ वा'

अथवा नियामार्थोऽयमारम्भ। क्षुद्रकमालवात्सेनायामेव। पर्वमा भूत् क्षोद्रकमालवकमन्यदिति'

कथासरित्सागर में विक्रम नृपति का सविस्तार वर्णन है एवं इसी आधार पर डा० राज बली पांडे ने अपने ग्रन्थ विक्रमादित्य' में वर्णन प्रस्तुत किया है।

उनके वर्णन में दो कल्पनायें हैं (१) गिर्दभिल्लों का मालव गोत्री मानना और दूसरा मालवों की ५८ B. C. में अवन्तिविजय। जैन कथाओं में राजा विक्रम के पूर्व एवं गिर्द भिल्ल के पश्चात् शकों का राज्य होना वर्णित है 'तेरस गद्द भिल्लस्स चत्तारि सगस्स तओ विक्कराइच्चो (विविधतीर्थ कल्प पृ० ३९) इसके अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा में नहपान चष्टन आदि का वर्णन है इनमें गिर्दभिल्लों का उल्लेख नहीं है। यति वृषभ द्वारा प्रणीत तिलोयपण्णति में (१७ एवं १८) भी वर्णित है। किन्तु इसमें विक्रमादित्य का उल्लेख नहीं है।

इस प्रकार इन कथाओं में सामञ्जस्य बिठाना कठिन है। मालवों की ५८ B O में उज्जैन विजय भी ठीक नहीं बैठती है। यह घटना कई शताब्दियों के पश्चात सम्पन्न हुई है।

इस संवत् का प्रचलन निश्चित रूप से अवन्ति विजय का सूचक नहीं है। मालवों का यह गणराज्य राजस्थान में ही बना था। इस बात को भी मजूमदार ने भी माना है। अगर मालवों का गणराज्य राजस्थान में ही बना था तब दीर्घकाल से प्रचलित यह वार्ता कि विक्रमी संवत को प्रचलित करने वाला कोई राजा विक्रम था स्वतः गलत साबित हो जाती है। यह संवत किसी विजय की स्मृति में न होकर केवल संघ के संस्थापन का सूचक मात्र है क्योंकि विजय की स्मृति में होता तो कहीं न कहीं इसका उल्लेख अवश्य होता जैसाकि नान्दसा के लेख में महता स्वशक्ति गुणाकृत्या पौन्येगु प्रथम चन्द्र दर्शन मिव मालवगणविषयमवतारयित्वा' है। इसमें मालवगण के साथ विषय शब्द भी है, जो उनके राज्य का सूचक है। अतएव निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि क्षुद्रक और मालव दो अलग २ गणों ने इकट्ठे होकर एक गणराज्य संगठित किया जिसका नाम मालव' रखा गया और जिस दिन यह गणराज्य बना उस दिन से काल की गणना के लिए एक संवत् भी बनाया गया जो आज विक्रमी संवत के नाम से प्रसिद्ध है।

परमार राजा नरवर्मा का चित्तौड़ पर अधिकार | २१

परमार राजा नरवर्मा का चित्तौड़ पर अधिकार रहने का उल्लेख चित्तौड़ की शक सं० १०२८ (११६१ वि) की एक अप्रकाशित प्रशस्ति में है जो जिनवल्लभसूरि से सम्बन्धित है। यह लेख मूल रूप से चित्तौड़ में उत्कीर्ण किया हुआ था, किन्तु अब वहां उपलब्ध नहीं है। इसकी एक प्रतिलिपि भारतीय संस्कृति मंदिर अहमदाबाद में उपलब्ध है। श्री नाहटाजी ने इसकी प्रतिलिपि मुझे भेजी है। इसमें ७८ श्लोक हैं इसलिए इस प्रशस्ति का नाम 'अष्ट सप्ततिका' भी रखा गया है। शुरू के ५ श्लोकों में ऋषभ और पार्श्व और सरस्वती की वन्दना की गई है। श्लोक ६ से १४ में भोज का वर्णन है। उदयादित्य का वर्णन श्लोक सं० १५ से २० में किया हुआ है। इसके लिए 'आदि वराह' शब्द प्रयुक्त हुआ है। श्लोक सं० २१ से २८ तक नरवर्मा का वर्णन है। इसके पश्चात् खरतरगच्छ के आचार्यों का वर्णन आदि है। जिनवल्लभ का चित्तौड़ रहना और विधि चैत्यों के निर्माण का वर्णन मिलता है। मंदिर के लिए नरवर्मा ने २ पारुत्थ मुद्रा दान में देने की व्यवस्था की थी।

परमार राजा भोज के चित्तौड़ पर अधिकार रहने की पुष्टि में कई सन्दर्भ उपलब्ध हैं[1] मुंज के समय से ही मेवाड़ का कुछ भाग परमारों

---

१ ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११२। विविध तीर्थ कल्प में अर्बुद कल्प और विमल वसति के एक लेख में वर्णित है कि आबू के राजा धंधुक भाग कर चित्तौड़ में भोज के पास गया था। यहीं से विमल उसे मनाकर वापस लाया था। चीरवा के लेख में 'भोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे' नाम उल्लिखित

के अधिकारों में चला गया था। किन्तु भोज के उत्तराधिकारियों के पास चित्तौड़ रहा था अथवा नहीं, इसके लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं था। इसके लिये 'खरतरगच्छपट्टावली' और चित्तौड़ के इस अप्रकाशित लेख में महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध है की जिन वल्लभ सूरि अपने समय के बड़े प्रसिद्ध विद्वान थे। इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। 'खरतर गच्छ पट्टावली' में वर्णित है कि एक बार नरवर्मा की सभा में किसी दक्षिणी पंडित ने समस्या 'कण्ठे कुठार कमठे ठकार' भेजी। इसकी पूर्ति उसके दरबार के किसी पंडित द्वारा जब नहीं हुई तब इसे चित्तौड़ में जिनवल्लभसूरि के पास भेजी। जिनवल्लभसूरि ने तत्काल पूर्ति करके भिजवा दी थी। वह से घूमते–घूमते एक बार धारा नगरी गये तो

है जो समिद्धेश्वर के चित्तौड़ के मंदिर के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार इसी मन्दिर के वि० सं० ११५८ के एक अन्य लेख में 'भोजस्वामीदेवजगती' प्रयुक्त है। इस सब सामग्री को देखकर ओझाजी ने यह मान्यता दी थी कि यह मंदिर परमार भोज द्वारा निर्मित था (ओझा निबंध–संग्रह भाग २ पृ० १८७ से १९२ एवं उनका निबंध 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवन नारायण' इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है।)

१ (i) श्री जिनवल्लभगणिरपि कतिभिर्दिनैर्विहृतो धारायाम्। केनाप्युक्त राजन् पुरो–देव! सोऽपि श्वेतपटो समस्यापूरक आगतोऽस्ति। –राज्ञातुष्टेनोक्तम्– भो जिनवल्लभगणे! पारुत्थ सहस्त्र ग्रामत्रय वा गृहाण। भणितं गणिभि भो महाराज! वय व्रतिनोऽर्थादि संग्रह न कुर्मः चित्रकूटे देवगृह द्वयं श्रावकैः कारितमस्ति तत्र पूजार्थं स्वमण्डपिकायामात् पारुत्थ द्वयं प्रतिदिनं दापय। ततो एवं श्रुत्वा– अहो निर्लोभता एतस्य महात्मनः श्री जिनवल्लभगणेरिति चिन्तितवान्। चित्रकूटमण्डपिकायास्तत् पारुत्थद्वयं भविष्यतीति कृतम्'

(युग प्रधान गुर्वावली पृ० ११)

(ii) अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका पृ० २१।

(ii) वीर भूमि चित्तौड़ पृ० २१।

राजा ने बड़ा सम्मान किया और १ लाख रुपये और १ ग्राम दान में देने को कहा तब सूरिजी ने लेने से इन्कार करके केवल इतना ही कहा कि चित्तौड़ में नव-निर्मित विधि चैत्य के लिये कुछ 'शाश्वत दाम' की व्यवस्था कर दी जावे। तब राजा ने चित्तौड़ की मण्डपिका से उक्त दाम की घोषणा[1] की। इस वर्णन की पुष्टि अब तक अन्य वर्णनों से नहीं होती थी। नरवर्मा द्वारा चित्तौड़ के जैन मन्दिरों के लिये कोई राशि 'शाश्वत दाम' के रूप में दी थी उसका उसकी प्रशस्तियों में कहीं उल्लेख नहीं है, किन्तु चित्तौड़ की इस प्रशस्ति से इसकी पुष्टि होती है। श्लोक सं० ७१ में वर्णित है[2] कि राजा नरवर्मा ने सूर्य संक्राति के अवसर पर जिनावर्जि के लिये २ पारुत्थ मुद्रा दान में दी। उसके पूर्व श्लोकों में विधि चैत्य की प्रतिष्ठा का वर्णन है। अतएव खरतरगच्छ पट्टावली के वर्णन से पुष्टि हो जाती है इस प्रकार जब नरवर्मा चित्तौड़ की मण्डपिका से दान की घोषणा करता है तो निश्चित रूप से यह भूभाग उसके अधिकार में था। संभवतः परमारों के अधिकार में चित्तौड़ वि० सं० ११९० तक रहा और इससे ही चालुक्य सिद्धराज ने यह भूभाग अधिकृत किया प्रतीत होता है।

---

२ प्रतिरवि संक्रांति ददौ पारुत्थ द्वितयमिह जिनावर्जि।
श्री चित्रकूट पिठा मार्गा (?) दाता नरवर्म नृप ॥७१॥

इस प्रशस्ति के सम्बन्ध में जिनवल्लभसूरि ने चर्चरी में भी उल्लेख किया है जो समसामयिक कृति होने से महत्वपूर्ण है।

(शोध पत्रिका में प्रकाशित)

देवड़ाओं की उत्पत्ति | २२

देवड़ाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अब तक कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी है। सिरोही राज्य की ख्यातों के अनुसार नाडोल शाखा के चौहान राजा मानसिंह के एक पुत्र देवराज हुआ जिससे यह शाखा चली और इसीलिये ये देवड़ा कहलाये।[1] वंश भास्कर में चौहानों की निर्वाण शाखा से इनकी उत्पत्ति मानी गई है।[2] नैणसी ने एक अलग मत प्रस्तुत किया है। उसका कहना है कि नाडोल के राजा आसराज का किसी देवी से प्रेम हो गया था और उसकी संतान देवड़ा कहलाई।[3] आधुनिक विद्वानों में भी मतैक्यता नहीं है। ओझा जी ने सिरोही राज्य की ख्यातों के वर्णन की सत्यता में संदेह प्रकट किया है। लाला सीताराम ने भी सिरोही राज्य के इतिहास में नैणसी के वर्णन से संगति बिठाते हुये उक्त ख्यातों के वर्णन को ठीक नहीं माना है। चौहान कुल कल्पद्रुम में देवड़ा शाखा को नाडोल की शाखा मानी है और लिखा है[4] कि यह शाखा कई बार निकली है। सिरोही वालों के पूर्वज उक्त मानसिंह के वंशज ही हैं।

---

१ लाला सीताराम—हिस्ट्री आफ सिरोही राज पृ १५६–६ सिरोही स्टेट गजेटियर—पृ २६८

२. इण कुल ही देवट अभिमानी। मही दुर्जन हुओ रणमानी॥
कुल जिनरो देवड़ा कहावै। बाण समर अनुपम बरसावै॥
(हिस्ट्री आफ सिरोही राज्य के पृ १५९ के फुटनोट से उद्धृत)

३ नैणसी की ख्यात हिन्दी अनुवाद भाग १ पृ १२०—१२३

४ चौहान कुल कल्पद्रुम पृ १६२

स्मरण रहे कि यह मानसिंह समरसिंह सोनगरा का द्वितीय पुत्र था। इसके बयाद राव सुम्भा ने आबू कब्जित किया था।

क्या राव सुम्भा देवड़ा जाति का था ?

प्रश्न यह है कि क्या राव सुम्भा देवड़ा जाति का था ? उसके और उसके उत्तराधिकारियों के कई शिलालेख मिले हैं। इन सब लेखों मे उसे चौहान ही लिखा गया है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण लेख वशिष्ठाश्रम का लेख है। ठीक इसी लेख के नीचे महाराणा कुम्भा का वि स १५ १ का शिलालेख उत्कीर्ण है।[5] उक्त राव सुम्भा के उत्तराधिकारियों के लेख का मूल पाठ इस प्रकार है —

स्वस्ति श्री नृप विक्रम कालातीत संवत् १३९४ वर्षे वैशाख शुदि १० गुरावद्ये ह श्री चन्द्रावत्यां **चाहुमान कलोद्धरण श्रीरण** राव श्री तेजसिंह सुत राव कान्हड़देव राष्ट्र प्रशासति सति चादि श्री महादेवेन इव या वशिष्ठस्य धर्म्मार्थिना कारापितमिदर्थं । तथा च **चाहुमान ज्ञातीय राव** श्री तेजसिंहेन स्वहस्तेन ग्राम वय दत्त वीरवाडु १ द्वितीय ज्यातुलि ग्राम २ तृतीय तेजलपुरमिति ३ तथा च **देवड़ा श्री** सिहुणा केन स्व करतेन सीहलुण ग्राम दत्तं तथा राव श्री कान्हड़देवेन स्वह स्तेन वीरवाड़ा ग्राम दत्तं तथा राव **श्री चाहुमाण ज्ञातीय** राव श्री सामतसिहन साजुनि हापुली किरणथमु ग्रामं त्रय दत्तं। शुभं भवतु ॥

इस लेख में ३ राजाओं के प्रसग २ दान देने के लेख हैं। इस लेख से बहुत ही स्पष्ट है कि राव सुम्भा के वंशज अपने आपको चौहान ही लिखते थे। उस समय देवड़ा शाखा भी प्रचलित से विद्यमान थी। उप रोक्त लेख में वर्णित सिहुणा इसी शाखा का था। यह निःसंदेह विमल वसति के वि०सं १३७८ के लेख म वर्णित राव सुम्भा के द्वितीय पुत्र तिहुणाक से भिन्न था।[6] केवल नामों की कुछ समानता से एक ही जाति का नहीं मान सकते है। आबू से प्राप्त लेखो में ऐसे नाम कई लेखों में

---

५ वीर विनोद पृ १२१३

श्रीमस्तु भवनामा समभिलस्तेजसिंहतिहुणाभ्याम ।
प्रभु दगिरीशाराम्यं भ्यायनिधि पालयामास ॥

मिलते हैं जो भिन्न २ जाति के थे। देवड़ा निहुणा जिसन उक्त ग्राम दिया था कोई उच्चाधिकारी या जागीरदार था।

कुम्भा के शिलालेखों में उसके पूर्वजों का विस्तार से उल्लेख है। अचलेश्वर मन्दिर के वि स० १३७७ और विमलवसति के वि० स० १३७८ के शिलालेखों में जो वंशावली दी गई है उसका विवरण इस प्रकार है —
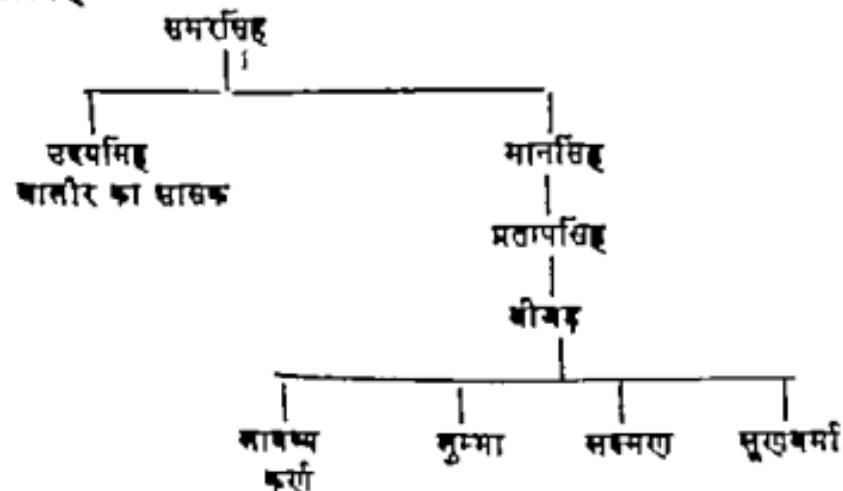
ख्यातों में लिखा है कि मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह का एक नाम देवराज भी था। ख्यातकारों का अगर यह वर्णन सही हो तो जिस पुरुष से वंश चला उसका नाम तो कम से कम शिलालेखों में आना ही चाहिए। प्रतापसिंह के लिए जो शिलालेखों में वृतान्त दिया गया है वह परम्परागत वर्णन मात्र है। अचलेश्वर के लेखों में "तंतो भवद्‌ वा जिन वंशो नु प्रतापनामो मयनाभिराम । सदा स्वकीर्त्या किल चाहुमान पुत्र्य प्रतापान्स तापि वारि ॥ विमल वसति के वि०स० १३७८ के लेख में 'प्रतापमल्लस्तनयु प्रतापी बभूव भूपाल सदस्सु मान्य' लिखा है। अतएव इसस देवड़ाओं की उत्पत्ति मानना प्रामाणहीन है।

इसके अतिरिक्त प्रताप सिंह को देवराज मानकर इससे उत्पत्ति मानने में देवड़ाओं की उत्पत्ति वि सं १३०० के बाद आती है जो सही नहीं है। अचलेश्वर मन्दिर के बाहर वि म १२२५ और १२२६ के शिलालेख लगे हुए हैं। इनमें देवड़ा जाति के बोराका उल्लेख है।[७] इसी

---

७ हिस्ट्री आफ सिरोही राज्य पृ १५ –६

प्रकार सिरोही जिले के सोवेरा ग्राम के जैन मन्दिर में वि सं १२८६ का एक शिलालेख है। इसमें देवड़ा विजयसिंह आदि का उल्लेख है और भी कैम इस क्षेत्र से मिलते हैं।[१] एक लेख वंतारणी ग्राम में वि सं ११४५ वैशाख सुदी ८ का जैन मन्दिर में लगा हुआ है इसमें "प्रमारण (रा) निज राम के राज-देवाड़ा ठ० साव रा प्रताप श्री हेमदेव" अंकित है यहाँ 'राजदेवाड़ा' शब्द देवड़ों के लिए प्रयुक्त प्रतीत न होकर परमार जाति के किसी पुरुष का नाम है। कान्हड़दे प्रबन्ध के अनुसार देवड़ा जाति के कायपल मजीठ आदि वि सं १३६८ के अल्लाउद्दीन के साथ हुए जालौर के युद्ध में सम्मिलित थे। इसका उक्त मय युद्ध में कोई नाम नहीं है इससे यह प्रतीत होता है कि यह जाति काफी प्राचीन है।

अतएव बहुत ही स्पष्ट है कि सिरोही राज्य के ख्यातों के अनुसार देवड़ाओं की उत्पत्ति मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह से नहीं हुई थी। मानसिंह के बहुत पहले ही देवड़ा जाति विद्यमान थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ख्यातकारों के सामने देवड़ाओं का पुराना इतिहास उपलब्ध नहीं था तो उन्होंने आबू के परमारों से राज्य हस्तगत करने वाले राव लुम्भा को ही देवड़ा जाति का मान लिया। उसके उत्तराधिकारी तेजसिंह कान्हड़देव सामन्तसिंह आदि का नाम ख्यातों में नहीं है।

प्राप्त शिलालेखों के आधार पर मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि रावलुम्भा देवड़ा जाति का नहीं था। वह चौहान जाति का था। देवड़ा शाखा चौहानों से अवश्य निकली है किन्तु उसकी किस शाखा से ? यह ज्ञात नहीं हो सका है।

देवड़ा शब्द की व्युत्पत्ति

देवड़ा शब्द देवराज के स्थान पर "देवड़" शब्द से बना प्रतीत [होत]ा है। आबू और इसके समीपवर्ती स्थानों में प्राप्त शिलालेखों में [यह] नाम बहुत ही मिलता है।[२] उदाहरणार्थ मुण्डस्था के जैन मन्दिर म

---

१ जैन लेख प्रकाश वर्ष १८ अंक ३-४ पृ. ९८
२ पुरातत्व प्राचीन जैन लेख संदोह क० सं ४७

वि सं १२११ के एक लेख में बीसल और देवड़ा नामक दो व्यक्तियों का उल्लेख है (बीसलदेवड़ाभ्यां) इसी प्रकार का उल्लेख कथा कोष प्रकरण में है। यह ग्रन्थ वि स ११०८ में जालोर में लिखागया था। इसमें भी देवड़ा नामक एक व्यक्ति से सम्बन्धित कथानक दिया हुआ है जो रोहिड़ा का रहने वाला था [10] (रोहिड्य नाम नयरं तत्थ देवडो नाम कुल पुत्तो परिवसइ) इससे पता चलता है कि यह नाम बहुत ही अधिक प्रचलित था। आश्चर्य नहीं है कि देवड़ा जाति की व्युत्पत्ति देवड़ नामक पुरुष से ही हुई हो। वंश भास्कर में देवट नामक पुरुष से इनकी उत्पत्ति मानी गई है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

देवड़ाओं का सिरोही प्रदेश पर अधिकार

सामन्तसिंह के बाद राजगुप्ता के उत्तराधिकारियों का क्या हुआ? इस सम्बन्ध में अभी शोध की आवश्यकता है। इतना अवश्य सत्य है कि वि स १४४२ तक ये लोग इस भाग में अवश्य शासक के रूप में विद्यमान थे। सामन्तसिंह के बाद में कान्हड़देव का पुत्र बीसलदेव उत्तराधिकारी रहा प्रतीत होता है। मुण्डस्थला ग्राम में निर्मित एक जैन मन्दिर में वि सं १४४२ के एक शिला लेख में इसका शासक के रूप में उल्लेख किया गया है। इस शिला लेख की ओर विद्वानों का ध्यान अभी गया नहीं है। इसके मिलने से सामन्तसिंह के उत्तराधिकारी के रूप में राजमल आदि को मानने की धारणा स्वतः गलत साबित सिद्ध हो जाती है। लेख का मूल पाठ इस प्रकार है —

१ सं १४४२ वर्षे जेठ सुदि
२ १ सोमे श्री महावीर.........
३ राज श्री कान्हड़ देव सु
४ तु राज श्री बीसल देव [वेम स]
५ वाड़ी प्राग्वाट ज्ञातक्या (दत्ता)
६ ग्राम प्रदि (प्रदि) प्रदेये से ना (ता)

---

१ कथाकोष प्रकरण पृ

ने आबू चापस से लिया। इसके उत्तराधिकारी का क्या हुआ ? कुछ जानकारी नहीं है अचलगढ़ के जैन मन्दिर की वि सं १५६६ के लेख में वहां के शासक का नाम सिरोही के शासक का दिया हुआ है। अतएव पता चलता है कि इसके पूर्व ही सिरोही के देवड़ों ने इसे हस्तगत कर लिया था।

इस प्रकार इन सब तथ्यों से पता चलता है कि देवड़ाओं की उत्पत्ति देवराज नामक सोलंकी शासक जिसका मूल नाम प्रताप सिंह था से हुई थी। सिरोही राज्य में अधिकार जमाने के समय इनकी कई शाखाएं उस समय विद्यमान थी। वि० सं० ११४४ के पाट नारायण के लेख में देवड़ा शोभित के पुत्र मेला का उल्लेख है।

[अन्वेषणा में प्रकाशित]

मारवाड के राठौड़ों की उत्पत्ति | २३

मारवाड के राठौड़ों की उत्पत्ति के विषय मे विद्वानो के कई मत हैं। यह निर्विवाद है कि यह राजवंश राव सीहा नामक एक साहसी योद्धा द्वारा स्थापित हुआ था। इस परिवार के मारवाड में आने के पूर्व भी कई उल्लेखनीय राठौड़ परिवार मारवाड में विद्यमान थे। हठूंडी बीजापुर मे राठौड़ धवल का वि० सं० १०५३ का शिलालेख मिला है।[1] ये हथूंडिया राठौड़ कहलाते थे। इनका एक अप्रकाशित शिलालेख वि० स० १२७८ माघ सुदी १५ का पीडवाडा के पास कोल्य ग्राम के शिवालय में लग रहा है। मंडोर मे भी वि० सं० १२१२ का एक शिलालेख मिला है जिसमे भी राठौड़ का[2] उल्लेख है। इसी प्रकार नैनास से वि० सं १२१२ का शिलालेख मिला है।

राव सीहा के पूर्वजों के सम्बंध में बड़ा विवाद है। जोधपुर और बीकानेर राज्य की ख्यातों के अनुसार राव सीहा कन्नोज से आया था जो जयचन्द्र का[3] वंशज था। इस प्रकार या कन्नोज में गहड़वाल कह लाते थे वे राजस्थान मे आने के बाद राष्ट्रकूट कहलाने लगे।

---

१ एपिग्राफिया इंडिका Vol X पृ १७–२४

२ आर्किओलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया वर्ष १९०९ मे प्रकाशित मण्डोर पर निबन्ध।

३ टाड–एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज Vol I पृ० १११ एवं II पृ० ८२४।

बीकानेर के रायसिंह की प्रशस्ति (जरनल बंगाल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी vol XVI (नई सिरीज) पृ० २९२। रेउ–मारवाड का

दूसरे मत के विद्वान राठौड़ और गहड़वालों की साम्यता पर संदेह[३] करते हैं। स्वर्गीय श्री एम एस माथुर ने एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था कि १०५० से १२०० ई के मध्य कन्नौज में कुछ समय के लिए राष्ट्रकूट राज्य भी रहा था। इनका आधार सूरत से त्रिलोचनपाल का वि० सं० ११५१ का ताम्रपत्र है, जिसमें लिखा है कि कन्नौज के राष्ट्रकूट राजा की कन्या के साथ पाणिग्रहण किया। बदायूं से १२वीं शताब्दी का शिलालेख मिला है। इसमें वहां के राष्ट्रकूट वंश के संस्थापक का नाम चन्द्र नामक राजा को बतलाया है, जो कन्नौज से आया था। अतएव इनकी धारणा है कि कन्नौज से ही एक शाखा मारवाड़ और एक शाखा यू पी में गई थी और पश्चात्कालीन ख्यात-लेखकों ने चन्द्र को जयचन्द्र बना दिया है।[४]

इस सम्बन्ध में बहुत अधिक सामग्री उपलब्ध है। मारवाड़ के राव सीह शिलालेखों को जिनमें इन्हें कन्नौजिया राठौड़ लिखा है अगर छोड़ दिया जावे तो भी जैन सामग्री में पर्याप्त सूचना दी गई है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में जो वि० सं० १५२८ के पूर्व की रचना है जयचन्द्र को राष्ट्रकूट लिखा है।[६] इस पुरातन प्रबन्ध की सूचना को मैं महत्वपूर्ण मानता हूं क्योंकि अधिकांशतः जयचन्द्र को राष्ट्रकूट वंशीय वहां लिखा जाता है, जहां मारवाड़ के राठौड़ों का वर्णन आवे। स्वतन्त्र रूप से कन्नौज के गहड़वाल शासकों को राठौड़ नहीं लिखा गया है। यह सहसा अपवाद है, अतएव महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कई अन्य जैन प्रशस्तियों में भी इस प्रकार की सूचना है। शान्तिनाथ ज्ञान भण्डार खम्भात में कल्पसूत्र की एक प्रति संगृहीत है। यह ताड़ पत्रों पर लिखी गई है। इसी प्रकार की एक प्रति मोहनलाल ज्ञानभण्डार सूर्यपुर में संग्रहीत है

इतिहास भाग १। आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इंडिया [illegible] पृ० १०१।

४ ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास भाग पहला पृ

५ इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली जून १९४७ पृ० १५१ से १६६।

६ कान्यकुब्जदेशे वाराणसीपुरी सप्तयोजन विस्तीर्णा द्वादश योजना

इस प्रकार समस्त सामग्री को, जो मारवाड़ के राजवंश से सम्बन्धित है देखकर मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मारवाड़ के राजवंश का संस्थापक जयचन्द्र का वंशज ही था और राठौड़ और गहड़वाल के वंशों में भी साम्यता रही है और कन्नौज के गहड़वालों को ही राठौड़ भी लिखते थे, जैसा कि पुरातन प्रबन्ध संग्रह में उल्लेखित है। इसी कारण सूरत के दानपात्र में इन्हें राठौड़ लिखा है और बदायूं के लेख में कन्नौज के शासकों को राठौड़ लिखा है।

इस प्रकार राठौड़ और गहड़वालों के पारस्परिक सम्बन्धों पर पुन विचार की आवश्यकता है। [विश्वम्भरा में प्रकाशित]

चमू समूह व्याकुलिततया क्वापि गन्तु न प्रभवति (प्रबन्ध चिन्ता मणी केवलराम शास्त्री द्वारा सम्पादित पृ० १८६)

और भारत में पहला आक्रमण वि० स १२३२ में करके मुल्तान और उच्छा पर अधिकार³ कर लिया था। इसके बाद वि० स० १२३५ में उसने गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात जाते समय सम्भवतः वह मेड़ता रोड किराडू नाडोल होकर आबू गया। किराडू के सोमेश्वर मंदिर की प्रतिमा भी वि० सं० १२३५ के शिलालेख के अनुसार तुरुष्कों द्वारा खण्डित की गई थी।⁴ वहां से नाडोल⁵ गया। पृथ्वीराज विजय में वर्णित है कि सुल्तान ने नाडोल पहुँच कर पृथ्वीराज को कर देने को कहा। नाडोल से वह आबू गया और वहाँ कासरदा गांव में युद्ध⁶ हुआ था। वहां सुल्तान की हार हुई थी। इस प्रकार प्रतीत होता है कि गजरात आक्रमण के समय उसने मेड़ता रोड पर भी आक्रमण किया था। फारसी तवारीखों में रेगिस्तान के मार्ग से गुजरात जाने का वर्णन मिलता है।⁷

मेड़ता रोड का यह मंदिर प्राचीन प्रतीत होता है। श्री अगरचन्द नाहटा ने कुछ वर्षों पूर्व यहाँ के शिलालेख भी प्रकाशित कराये थे। इनमें प्राचीनतम १ वीं शताब्दी का है। वि सं० ११८१ में धर्म घोष सूरि ने इसके शिखर की प्रतिष्ठा⁸ की थी। मंदिर इससे भी प्राचीन

---

३ अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० ८०–८१ आलुक्याज आफ गजरात पृ० १३५

४ किराडू के वि सं १२३५ के लेख की पंक्ति १ और १ में "स वर्णन है।

मूर्तिरासीद् स्म तुरुष्कैः [र्भग्ने] भंक्ता—

५ अरली चौहान डाइनेस्टीज पृ० ८ फुटनोट ४४ एवं पृ० १३८

६ सुंधा का लेख श्लोक ३४ से ३६। इसमें नाडोल के चौहानों ने भी गुजरात की सेना के साथ युद्ध में भाग लिया था।

७ बिग्ज तारीख–ए–फरिश्ता भाग १ पृ १७ ३–तबकात इ अकबरी भाग १ पृ ३६।

८ एगारसलएसु इक्कासीइसमहिएसु विक्कमाइच्चरिसेसु
य इक्कलेसु पायगच्छधम्मघोससिरिसीसमहसूरिपट्टपइट्ठियम्मि—
... ४७ ६०ँ गिरि

फलोदी पार्श्वनाथ मन्दिर पर मोहम्मद गोरी का आक्रमण | २४

मेड़ता रोड पर पार्श्वनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है जो फलोदी पार्श्व नाथ के नाम से प्रसिद्ध है जिन प्रभ सूरि ने विविध तीर्थ कल्प में एक बहुत ही महत्वपूर्ण सूचना दी है कि शहाबुद्दीन गौरी ने इस मंदिर[1] में विराजमान मूलनायक प्रतिमा को भग्न की। मंदिर को भग्न नहीं किया एवं अधिष्ठायक देव की इच्छा नहीं होने से दूसरी मूर्ति स्थापित नहीं की जा सकी। उनका कहना है कि खंडित प्रतिमा भी बहुत ही प्रभावशाली और चमत्कार पूर्ण थी।

सुल्तान मोहम्मद गोरी का यह आक्रमण कब हुआ था ? इसमें कोई संवत दिया हुआ नहीं है किन्तु समसामयिक घटनाओं से पता चलता है कि घटना वि० सं० १२३५ में घटित हुई थी। मन्दिर में वि० सं० १२२१ मिगसर सुदि ६ का एक शिलालेख लगा हुआ है जिसमें त्रिम कूटीय शिखा पट्ट लगाने का उल्लेख है।[2] इससे पता चलता है कि उस वर्ष के पूर्व संभवतः सुल्तान का आक्रमण नहीं हुआ था और निर्माण कार्य चल रहा था। तबकात-ए-नासीरी से पता चलता है कि वि० सं० १२३० के आस-पास मोहम्मद गोरी गजनी का अधिकारी बना था

---

१ कालंतरेण कलिकालमाहप्पेण केलिप्पिया वंतरा हवंति पमिर चित्ता य तित्पमाय पर समसु अहिट्ठायगेसु सुरत्ताणमाहम्मदीगगा मर्गा मूल बिंब —

सुरत्ताणेण बिम्बं फुरमाण जहा–ए प्रस्स देवभवणस्स केणावि भंगा न कायव्वो त्ति— (विविध तीर्थ कल्प पृ० १ ६)

२ प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २ पृ०

और भारत में पहला आक्रमण वि० सं० १२३२ में करके मुल्तान और उच्छ पर अधिकार³ कर लिया था। इसके बाद वि० सं० १२३५ में उसने गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात जाते समय संभवतः वह मेड़ता रोड किराडू नाडोल होकर आबू गया। किराडू के सोमेश्वर मंदिर की प्रतिमा भी वि० सं० १२३५ के शिलालेख के अनुसार तुरुष्कों द्वारा खण्डित की गई थी।[4] वहां से नाडोल[5] गया। पृथ्वीराज विजय में वर्णित है कि सुल्तान ने नाडोल पहुँच कर पृथ्वीराज को कर देने का कहा। नाडोल से वह आबू गया और वहां कासहृदा गांव में युद्ध[6] हुआ था। वहां सुल्तान की हार हुई थी। इस प्रकार प्रतीत होता है कि गुजरात आक्रमण के समय उसने मेड़ता रोड पर भी आक्रमण किया था। फारसी तवारीखों में रेगिस्तान के मार्ग से गुजरात जाने का वर्णन मिलता है।[7]

मेड़ता रोड का यह मंदिर प्राचीन प्रतीत होता है। श्री अगरचन्द नाहटा ने कुछ वर्षों पूर्व यहां के शिलालेख भी प्रकाशित कराये थे। इनमें प्राचीनतम १२ वीं शताब्दी का है। वि. सं० ११८१ में धर्मघोष सूरि ने इसके शिखर की प्रतिष्ठा[8] की थी। मंदिर इससे भी प्राचीन

---

३ अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ ८०-८१ चालुक्याज आफ गुजरात पृ० १३५

४ किराडू के वि० सं० १२३५ के लेख की पंक्ति ९ और १० में इस वर्णन है।

मूर्तिरासीत् स्म तुरुष्कै [र्भ] ग्ना—

५ अरली चौहान डाइनेस्टीज पृ० ८ फुटनोट ४४ एवं पृ ११८

६ पृथ्वीराज विजय श्लोक १४ से १९। इसमें नाडोल के चौहानों ने भी गुजरात की सेना के साथ युद्ध में भाग लिया था।

७ ब्रिग्ज तारीख-ए-फरिश्ता भाग १ पृ १७० तबकात ए अकबरी भाग १ पृ ३६।

८ एगारससएसु इक्कासीइसमहिएसु विक्कमाइयवरिसेसु
य इक्कतेसु रायगच्छमंडणगुणिरिसीनमहसूरिपट्टपइट्ठिएहि
महाभागधम्म घोसमुणीसरगुणसिग्धपत्तपयपइट्ठेहि सिरि

रहा था। खरतर गच्छ परम्परा के अनुसार श्री जिन पति सूरि ने इसका जीर्णोद्धार १२१४ वि० सं० में कराया[9] और श्री भरमट श्रावक ने १२ वी शताब्दी में उत्ताण पट्ट यहाँ स्थापित कराया था।[1] तपागच्छ परम्परा के अनुसार भी यहाँ १२०४ में प्रतिष्ठा समारोह हुआ था।

इससे पता चलता है कि मंदिर प्राचीन था और उसकी मान्यता बहुत थी। इसलिए सुल्तान का ध्यान भी गुजरात के मार्ग में जाते समय इसकी ओर आकृष्ट हुआ और मूलनायक प्रतिमा को खण्डित करदी। यह घटना वि० स० १२१५ में हुई। यद्यपि इतिहासकारों का ध्यान इस मन्दिर के भग्नगण की ओर नहीं गया है विविध तीर्थ कल्प में वर्णन होने से प्रमाणिक घटना मानी जा सकती है।

[वरदा में प्रकाशित]

सूरिहिं पासनाह चेईं अमिहरे चउविहसंघसमक्खं पइट्ठा किआ (विविधतार्थ कल्प पृ १०६)

९ 'सं १२१४ फलवर्धिकायां विधि चत्ये पार्श्वनाथ स्थापित जैन सत्य प्रकाश वर्ष ४ म नाहटाजी का लेख

१० जैन लेख संग्रह भाग १ लेख स० २२२